अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
१— सार्धान्तिक विधि वाक्य	१
२— बन्धन मोक्ष वाक्य	१०
३— अविद्वनिन्दा वाक्य	१५
४— जगन्मिथ्या वाक्य	१९
५— उपदेश वाक्य	२४
६— जीव ब्रह्मवाक्य	३१
७— मनन वाक्य	३६
८— जीवमुक्ति वाक्य	४२
९— स्वानुभुति वाक्य	५८
१०— समाधि वाक्य	७१
११— नाना लिंग स्वरूप वाक्य	७८
१२— पुंलिंग स्वरूप वाक्य	८३
१३— स्त्रीलिंग स्वरूप वाक्य	९०
१४— नपुंसक लिंग स्वरूप वाक्य	९३
१५— आत्म स्वरूप वाक्य	१०१
१६— सर्व स्वरूप वाक्य	१०६
१७— ब्रह्म स्वरूप वाक्य	१११
१८— अवशिष्ट वाक्य	१२१
१९— फल वाक्य	१२६
२०— विदेह मुक्ति वाक्य	१३२
२१— उपसंहार	१४४

निवेदन

जीवनमुक्त महात्मा तैलंगस्वामी विरचित महावाक्य रत्नावली व उसका सरल हिंदी अनुवाद आज तक अप्राप्त रहा। भक्त जनों के बाम्बार अनुरोध तथा स्वामी जी की अपार करुणा से इस पुस्तक के अनुवाद का प्रयास किया गया है। पुस्तक के मूल प्रकाशक स्व. उमाचरण मुखोपाध्याय के विचारों का आदर करते हुए उसके भाव को अपरिवर्तित रखने का प्रयास किया गया है। अपार करुणामय स्यमीजी की अशेष कृपा से हमने इस पुस्तक का अनुवाद करने का बीड़ा उठाया और अनंत श्यामा सिंह जी को यह जिम्मेदारी सौपी। हमें आशा है कि प्रेमी पाठक, भक्तजन व विशेष साधकों के लिए यह पुस्तक सहयोगी सिद्ध होगी। विषय अत्यंत गूढ़ होने के कारण साधारण व्यक्ति के लिए इसे समझना काफी कठिन है। उपनिषद के श्लोक और तैलंग स्वामी जैसे महात्मा द्वारा इसकी व्याख्या का अक्षरशः भाषांतरण करते समय इसे त्रुटि रहित करने का हर संभव प्रयास किया गया है, फिर भी कुछ त्रुटियों का रह जाना संभव है। आशा है कि सुधि पाठक इसके लिए अनुवादक को क्षमा करेंगे।

डाः इला सिन्हा (साहा)
तैलंग स्वामी मठ
पंचगंगा घाट, वारानसी

रासपूर्णिमा
२८शे कार्त्तिक १४१२, मंगलबार
१५इ नवम्बर २००५
''तारा तीथ''
१५२, जि. टि. रोड,
उत्तरपाड़ा, हुगली, प. बंगाल

मंगलाचरण

पंचशांतयः

वाक्–पूर्ण–सहनाप्यायं–भद्र कर्णेभिरेर च!
पंचशान्तिः पतित्वादौ पठेद्वाक्यान्यान्तरम्॥

(वाक्) ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता, (पूर्ण) पूर्णमदः पूर्णमिदम्, (सहना), ॐ सह नाववतु, (आप्यायम्) ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि एवम् ॐ भद्रे कर्णेभिः इत्यादि पंच शान्ति पाठ करने के बाद इस महाकाव्यरत्नावली का पाठ करें।

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि॥ वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेजाहोराक्रान्त संदधामृत्यं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १

–ऐतरेयोपनिषत् (शान्तिपाठ)

हे स्वप्रकाश परमात्मन्! मेरे वाक्य (अंतःकरण) मन में प्रतिष्ठित हैं और मेरा मन वाक्य में प्रतिष्ठित है अर्थात् ब्रह्मविद्या प्रतिपादक जो भी वक्तव्य है, वह पहले मन में उदित होता है उसके बाद वाक्यों के द्वारा प्रकट होता है। हमारे मन और वाणी सर्वदा आपकी कृपा से सावधान होकर आपके तत्वानुसंधान में नियुक्त रहें। हे प्रकाशमय ब्रह्मचैतन्य! आप हमारी अविद्या वरणापनोदनार्थ हमारे अंतर में प्रकाशित हों, हे भगवन! आपकी कृपा से हमारे वाक्य एवं मन वेदविद्या का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हों। हे प्रभो! (श्रुतम्) गुरु के मुख से सुना हुआ हमारा तत्वज्ञान हमारा परित्याग न करे अर्थात् हम इसे विस्मृत न करें। हम आलस्य रहित होकर इस अध्यीत (पढ़ी हुई) विद्या की दिवारात्रि चर्चा करें। यह अध्यीत विद्या (ऋतम्) परमार्थभूत वस्तु बोलते रहें एवं सत्य अर्थात् व्यवहारिक यथाभूत अर्थ भी बोलते रहें। (तत्) वे ही ब्रह्म सदा शिष्य स्थानीय मेरी रक्षा करें एवं वही ब्रह्मतत्व वक्ता अर्थात् ब्रह्मतत्वोपदृष्टा गुरु की रक्षा करें॥ हे सर्व रक्षक! आपकी कृपा हमारे अध्यात्मिकादित्रिताप को पूर्ण रूप से निवृत करे॥१

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते॥
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

–ईशोपनिषत् (शान्तिपाठ)

(अदः) जो सभी पदार्थ इन्द्रियों से अगोचर (सुक्ष्म) हैं, वे ब्रह्म द्वारा व्याप्त अर्थात् (पूर्ण) हैं, (इदम्) जो सभी पदार्थ इन्द्रिय–गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष हैं, वे भी ब्रह्म द्वारा पूर्ण हैं एवं पूरा जगत ही ब्रह्म द्वारा अभिव्यक्त हुआ है तथा उसी पूर्णस्वभाव ब्रह्म की पूर्णता जगत्व्याप्त होते हुए भी उसकी पूर्णता अवशिष्ट रहती है अर्थात् पूर्णता में हानि नहीं होती॥ (ॐ) हे मंगलमय सर्वरक्षक पितः। (शान्तिः) हमारे आध्यात्मिक, अधिदैविक एवं अधिभौतिक ये तीनों प्रकार के ताप आपकी कृपा से संपूर्णरूप से निवृत्त हों॥२

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यम् करवावहै। तेजस्विनाम् वधीतमस्तु मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः॥३

–कठोपनिषत्, (शान्तिपाठ)

वह प्रसिद्ध प्रणवाख्या परमेश्वर शिष्य आचार्य उभय (दोनों) को (अवतु) विद्या रूप में प्रकाश द्वारा रक्षा करे एवं (सह नौ भुनक्तु) वही प्रसिद्ध परमेश्वर (शिष्याचार्य) हमें विद्याफल का भोग कराए। (सह) हम शिष्य और आचार्य दोनों मिलकर उसकी कृपा से (वीर्याम्) विद्याकृत सामर्थ्य (करवावहै) निष्पन्न करने में समर्थ हों। हे तेजस्वीन्! हमारी (अधीतं) अधीत विद्या आपकी कृपा से वीर्यवान हो। (मा विद्विषावहै) हे प्रभो! हम कभी भी प्रमाद के वश होकर परस्पर विद्वेषभाजन न बनें॥३

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गनि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्र मथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्तवनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मस्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥४

–छान्दग्योपनिषत् (शान्तिपाठ)

हे ईश्वर! आपकी कृपा से हमारे समस्त अङ्ग, वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल व इन्द्रिय वृद्धि या पुष्टिलाभ करे। उपनिषद् प्रतिपादित ब्रह्म हमारे निकट प्रतिभात हों। मैं ब्रह्म का निराकरण या अस्वीकार न करूँ

एवं ब्रह्म मेरा प्रत्याख्यान या परित्याग न करें। उनके निकट मेरी और मेरे निकट उनकी अप्रत्याख्यानता सर्वदा विद्यमान रहे एवं ब्रह्मनिष्ठ मुझमें उपनिषद् उक्त सभी धर्म प्रकाशित हों।। ४

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्योमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गस्तुष्टु वा ँसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः।। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।। ५

—प्रश्नोपनिषत् (शान्तिपाठ)

हे देवगण! हम कान द्वारा कल्याणकर विषयों का श्रवण करें; चक्षु से मङ्गलमय दृश्यों का दर्शन करें एवम् स्थिरतर देह से स्तोत्रपरायण होकर देवगणों के लिए हितकर आयु भोग करने में समर्थ हों। (स्वस्ति) इस मंत्र द्वारा मंदबुद्धि पर कृपा दृष्टि रखने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जा रही है। (इन्द्रो वृद्धश्रवाः) हे त्रिलोकपतिसर्वैश्वर्यदातः ईश्वर! हे वृहद् कीर्तियुक्त इन्द्र! आपकी कृपा से हम सब के मन कल्याण युक्त हों। हे सर्वज्ञ! हे पुष्टिकर्त्ता ईश्वर! आप सर्व प्रकार के कल्याण द्वारा हम सब को अनुगृहीत करें। हे अकुण्ठितगति ताक्ष्र्योदर अर्थात् गरुण! आप हमारे कल्याण का विधान करें, एवं हे देवगुरु वृहस्पति! आप हमारे मङ्गल का विधान करें। शान्ति, शान्ति, शान्ति।। ५

শ্রী শ্রীমদ্ তৈলঙ্গ স্বামী

আবির্ভাব ঃ ১৬০৭ ইঃ
পৌষ শুক্লা একাদশী ঃ ১০১৪ শকাব্দ

তিরোভাব ঃ ১৮৮৭ ইঃ
পৌষ শুক্লা একাদশী ১২৯৪ শকা

महात्मा तैलङ्गस्वामी विरचित महावाक्य–रत्नावली
व
उसका सरल हिंदी अनुवाद

अथसार्द्धान्तिकविधि वाक्यानि।। १ ।।

वेद विहित समस्त विधिवाक्य अर्थात् ब्रह्मबोधक वाक्यों को उद्धृत किया जा रहा है।

सर्वं खल्विदम् ब्रह्म तज्जलानीतिशान्त उपासीत।।१
–छान्दग्योपनिषत्, ३/१४/१

(सर्वं खल्विदम् ब्रह्म) निज–अज्ञान–विकल्पित इदं– पद वाच्य में प्रकट–समस्त प्रपंच स्वयं ब्रह्म हैं; निमित्तोपादान होने के कारण ब्रह्म स्वयं कार्य रूप में प्रपंचों के आकार में प्रकाशित होते हैं। (तज्जलानीति) प्रपंचसमूह ब्रह्म से उत्पन्न, उसी में स्थित एवं उसी में लीन होते हैं अतएव कार्य–कारण कल्पना से रहित होकर 'मैं ही एकमात्र प्रतियोगी रहित ब्रह्म हूँ, इस रूप में उपासना करनी होगी, अर्थात् हमेशा ब्रह्म की खोज में लगे रहना होगा।।१

आत्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मिति।।२
– बृहदारण्यकोपनिषत्।१/४/१०

हे मैत्रेयी! मैं ही सर्वापन्हवसिद्ध परमात्मा हूँ, यह द्रष्टव्य है (साक्षात ज्ञेय)। वेदान्त वाक्यों के श्रवण, उसके अर्थ के मनन एवं मनन के बाद योगयुक्त होकर निद्दिधासन अर्थात् ध्यान और उसके पश्चात् 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस रूप का साक्षात्कार ही उसे जानने का उपाय है।। २

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निद्दिध्यासितव्याः।। ३
–। बृहदारण्यकोपनिषत् २/४/५

हे मानव या प्रिय शिष्य! आत्मा का साक्षात्कार करो। श्रुति द्वारा आत्म विषय श्रवण, युक्ति द्वारा आत्म विषयों का मनन एवं आत्म विषयों का

निद्विधासन अर्थात् योगयुक्त होकर साक्षात्कार करना ही आत्मसाक्षात्कार का उपाय है।।३

महतपदं ज्ञात्वा वृक्षमूले वसेत् ।। ४
–सुबालोपनिषत्; १३ खण्ड

महत् पद ब्रह्म को जानकर वृक्षमूल मे आश्रय अर्थात् गृहत्याग करना होगा। ४

सच्चिदानंदात्मानंद्वितीयं ब्रह्म भावयेत्।। ५
––– बज्रसूचिकोपनिषत्।

सच्चिदानंदस्वरूप अद्वितीय ब्रह्म का चिंतन करो।। ५

अहं ब्रह्मस्मीत्यनुसंधानं कुर्यात्।। ६

मैं ही ब्रह्म हूँ इस रूप में अनुसंधान या चिंतन करो।।'.६

स तेजज्ञो बालोन्मत्तपिशाचवज्जड़्वत्तया लोकमाचरेत्।। ७
–मण्डलव्राह्मणोपनिषत्, पंचम् ब्राह्मण

ब्रह्मज्ञ, बालक, उन्मत्त एवं पिशाच की तरह जड़ वृत्ति द्वारा अपने स्वरूप को गोपन कर लोकालय में विचरण करे।। ७

ब्राह्मणः समाहितो भुत्वा तत्वंपदैक्यमेव सदा कुर्यात्।। ८
–––पैङ्गलोपनिषत् ३/१

ब्रह्मवेत्ता एकाग्रचित्त होकर तत्वमसि अर्थात् तत् एवं त्वं पदों के एक्य का चिंतन करेगा अर्थात् जीवब्रह्म के एक्य का चिंतन करे।। ८

सर्वत्राद्वैतब्रह्मबुद्धिं कुर्यात्।। ९

सर्वत्र द्वैत रहित ब्रह्मज्ञान करे अर्थात् अपनी आत्मा को ब्रह्म स्वरूप समझे।। ९

आशाम्बरो ननमस्कारो नस्वाहाकारो नस्वधाकारो।।
–परमहंसपरिब्राजकोपनिषत्
ननिन्दास्तुतिर्यादृच्छिको भवेत्।। १०

दिगम्बर, एवं किसी को भी नमस्कार, यज्ञादि विषयों में स्वाहा व स्वधाकार एवं निन्दास्तुति–वर्जित होकर यदृच्छभाव से अर्थात् इच्छानुसार निज ब्रह्मस्वरूप में विचरण करे।।१०

सर्वतः स्वरूपमेव पश्यान जीवन्मुक्तिमवाप्या प्रारब्ध प्रतिभासनायपर्यन्तं चतुर्विधं स्वरूपं ज्ञात्वा देहपतनपर्यन्तं स्वरूपानुसंधानेन वसेत्।। ११
– नारदपरिव्राजकोपनिषत् ७/२

स्वरूपानुसंधानं विनान्यथाचारपरो'न भवेत् ।। १२

सभी में अपने ब्रह्मस्परूप का दर्शन कर जीवन्मुक्ति को प्राप्त होकर प्रारब्ध कर्मजन्य मिथ्याज्ञान के नाश तक निज ब्रह्मस्वरूप के अनुसंधान में रत होकर अवस्थान करे। स्वरूप अनुसंधान के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य न करे।। ११, १२

वेदान्तश्रवण कुर्वन् योगम् समारभेत्।।१३
आकुञ्चनेन कुण्डलिन्याः कपाटमुद्घाटय मोक्षद्वारम् विभेदयत्।। १४
शाण्डिल्योपनिषत् १/५४

वेदान्तग्रंथ श्रवणपूर्वक योगानुष्ठान करे। कुण्डलिनी शक्ति के आकुंचन द्वारा उसके कपाट का उद्घाटन कर मोक्षद्वार भेद अर्थात् उद्घाटन करे । १३, १४

यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।। १५
ज्ञानमात्मानि महती नियच्छेत्तद्यच्छेच्छन्त आत्मनि।। १६
–कठोपनिषत्,१/३/१३

प्राज्ञव्यक्ति वाक्य मन संयत करेंगे, वही ज्ञान संयत करेंगे एवं ज्ञान आत्मा को संयत करेगा। महान आत्मा के ज्ञान को नियमित कर आत्मा को अर्थात् ब्रह्म स्वरूप में शांत होकर संयत अवस्था में रहें।। १५, १६

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः।। १७
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।।१८
–वृहदारण्यकोपनिषत् ४/४/१२

अगर अपनी आत्मा को ब्रह्मस्वरूप समझ सकें तब किस चीज की कामना करेंगे? कामना करके या किसी वस्तु की कामना में अपने शरीर को पीड़ा देंगे? क्योंकि कामना ही दुख का मूल है। अगर तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाओ, तो तुम्हारे पास प्रार्थना करने के लिए कौन सा विषय बचा? १७,१८

त्वमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत् ब्राह्मणः।। १९
नानुध्यायाद्बहुञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत् ।। २०

— वृहदारण्यकोपनिषत् ४/४/२१

धीर ब्राह्मण ब्रह्म को जानकर अपने स्वरूप का ज्ञान करे। अनेक वाक्यों द्वारा उनका अनुध्यान न करे, क्योंकि अनेक वाक्यों द्वारा अनुध्यान करने से केवल वाक्यों का अपव्यवहार होता है अर्थात् बुद्धिभ्रंश होता है।। १९, २०

यतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा।। २१
यतो निर्विषयो नाम मनसो मुक्तिरिष्यते।। २२

— त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५/१

मन के निर्विषय (विषयशून्य) होने पर मुक्ति लाभ होता है, अतः मुक्ति की कामना करने वाले पुरुष के मन को निर्विषय अर्थात् वासना वर्जित करना ही कर्त्तव्य है।। २१, २२

चित्तमेव ही संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत।। २३

—मैत्रेय्युपनिषत्

चित्त से ही संसार (भोग) उत्पन्न होता है, अतएव चित्त को यत्नपूर्वक शुद्ध करें।।२३

दृश्यं ह्या दृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्।।२४

— तेजोबिन्दूपनिषत् १/५०

मायाकार्यमिदं भेदस्ति चेद्ब्रह्मभावनैम्।। २५

— तेजोबिन्दूपनिषत् ६/१००

यहां भावना का स्वरुप उक्त है :— दृश्य जगत को अदृश्य ब्रह्म का रूप समझ कर दृश्य को ही ब्रह्म रूप समझना चाहिए। यह प्रत्यक्ष जगत माया कार्य एवं अनन्त भेदयुक्त है, इस प्रकार ज्ञान से 'सब कुछ ब्रह्म है' यह कल्पना करो। २४—२५

देहोह्हमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः।।२६

— तेजोबिन्दूपनिषत् ६/१००

यदि माया कार्य में देह के आत्माभिमानवश दुःख उत्पन्न हो तो उस आत्माभिमान का त्याग कर 'मैं ही ब्रह्म हूं' ऐसा चिंतन करें ।। २६

हृदयग्रन्थिरस्तित्वे छिद्यते ब्रह्मचक्रकम्।। २७
संशये समनुप्राप्ते ब्रह्मनिश्चयमाश्रयेत्।। २८

— तेजोबिन्दूपनिषत् ६/१०१

ब्रह्मचर्य ही हृदयग्रन्थि रूप अविद्या के अस्तित्व का छेदन करने में समर्थ है। 'मैं ब्रह्म हूं या नहीं' यह संशय उत्पन्न होने पर 'मैं ही ब्रह्म हूं' इस प्रकार निश्चय करें ।। २७—२८

विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रो जीवितं वापि चञ्चलम्।। २९
विहाय शास्त्रजालानि यत्सत्यं तदुपास्यताम्।। ३०

— पैङ्गलोपनिषत्, ४/१७

जीवन को क्षणभंगुर एवं चंचल जान कर अक्षय ब्रह्म स्वरूप में ही जीवन को तन्मय कर दें। शास्त्र जाल का त्याग कर जो सत्य ब्रह्म स्वरुप है। उसी की उपासना करें। २९—३०

यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निःस्त्रीकस्य क्वभोगभूः।। ३१
स्त्रियं त्यक्तवां जगत्यक्तं जगत्यक्ता सुखी भवेत्।। ३२

— महोपनिषत् ३/४८

जिसकी स्त्री है, उसे ही स्त्री संभोग की इच्छा होती है : जिसकी स्त्री नहीं है उसके स्त्री संभोग की उत्पत्ति कहां होगी? स्त्री संभोग की इच्छा का त्याग करने पर ही जगत का त्याग करने में समर्थ हो सकते हैं एवं जगत का त्याग करने पर ही मनुष्य सुखी होता है।। ३१—३२

चित्तं कारणमर्थानां तमिन्सति जगत्रह्लयम्।। ३३
तसिन्क्षीणे जगत्क्षीणं तच्चिकित्स्यं ग्रत्नतः।। ३४

पुरुषार्थ के कारण ही चित्त है एवं चित्त रहने पर ही त्रिजगत और कार्य रहते हैं। चित्त क्षीण होने पर जगत का (सांसारिक विषयों का) क्षय होता है, अतएव चित्त व्याधि की चिकित्सा यत्नपूर्वक करें ।। ३३—३४

सुप्तेरुत्थाय सुऽयंन्तं ब्रह्मैकं प्रवचिन्त्यिताम् ।। ३५ ।।

— वराहोपनषित्, २/६४

गच्छंस्तष्ठन्नुपविशञ्छयानो वाऽन्यथापि वा।। ३६
— कुण्डिकोपनिषत्, २८

नींद से उठने पर दोबारा नींद न आए, इसलिए केवल ब्रह्म का ही चिंतन करें। यदि तुम कहीं गमन, अवस्थान, उपवेशन या शयन कर रहे हो तब भी एकमात्र ब्रह्म का ही चिंतन करो।। ३५–३६

यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ।। ३७
— कुण्डिकोपनिषत्, २८

ज्योतिर्लिंगं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत्सदा यतिः ।।३८
— ब्रह्मविद्योपनिषत् ८०

अपने ब्रह्मस्वरूप में रमण करने वाला मननशील पुरुष ब्रह्मा में इच्छानुसार निवास करता है एवं योगी सदा अपनी भृकुटि के मध्य ब्रह्म को – ज्योतिर्मय स्वरूप में कल्पना करता है।। ३७–३८

आत्मानमात्मना साक्षाद्ब्रह्म बुद्ध्वा सुनिश्चलम्।
देहजात्यादिसंबन्धान्वर्णाश्रमसमन्वितान् ।। ४०
— ब्रह्मविद्योपनिषत् २९

एकाकी निःस्पृहस्तिष्ठेन्न हि केन सहालपेत् ।। ४१ ।।
— नारदपरिब्राजकोपनिषत्३/५९

साक्षात ब्रह्म बुद्धि द्वारा अपनी आत्मा को निश्चित कर एवं जाति आदि वर्णाश्रम के संबंधियों का त्याग कर एकाकी निष्प्रिह रूप से रह कर, किसी से भी बातचीत न कर अर्थात मौन होकर रहे। ३९,४०,४१

मुनिःकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।। ४३
— नारदपरिब्राजकोपनिषत् ४/३२

संन्यासी सर्वदा 'नारायण' केवल यही वाक्य बोलें एवं मौन व्रत का पालन कर कौपीनधारी अथवा नग्न रह कर सदा ब्रह्म ध्यान में तत्पर रहें।। ४२–४३

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशिषः ।। ४४ ।।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ।। ४५
— नारदपरिब्राजकोपनिषत् ३/४४

एकमात्र परमात्मा में ही रमणशील एवं वासना और प्रार्थना से वर्जित होकर एकमात्र परमात्मा के आश्रय का अवलंबन कर पृथ्वी पर विचरण करें। ४४–४५

संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः । ४६
अन्धवज्जड़वच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ।। ४७
— नारदपरिब्राजकोपनिषत् ४/३६

सबसे (संदिग्ध होकर) आत्मगोपन कर व वर्णाश्रम रहित होकर अंधे की भांति या जड़ की भांति अथवा गूंगे की तरह पृथ्वी पर विचरण करें।। ४४--४५

यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ।। ४६
यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत् ।। ४९
लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत् ।। ५०
जिह्वया यद्रसं ह्यत्ति तत्तदात्मेति भावयेत् ।। ५१
त्वचा यद्यत्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत् ।। ५२
— योगतत्वोपनिषत्, ६९–७१

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत्।। ५३
— तेजोबिन्दूपनिषत्, १/२९

चक्षु के द्वारा जो भी दर्शन करें उसे ब्रह्मस्वरुप समझें एवं कानों के द्वारा जो भी सुनें उसे भी ब्रह्मस्वरुप मानें। नासिका द्वारा जिस गंध का ग्रहण करें एवं जिह्वा द्वारा जिस रस का आस्वादन करें उसे भी ब्रह्म स्वरुप मानें। त्वचा द्वारा जिस का स्पर्श करें उसे भी ब्रह्ममय समझें। इस प्रकार शिष्य (मुमुक्षु) अपनी दृष्टि को ज्ञानमयी कर पूरे संसार में ब्रह्म का दर्शन करे।। ४८,४९,५०

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत्।। ५४
दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलोकिनी।। ५५
— तेजोबिन्दूपनिषत् १/३०

दृष्टि को नासाग्र अवलोकनीय (नाक के अगले सिरे को देखनेवाली) न बना कर द्रष्टा, दर्शन एवं दृश्य जगत जिसमें विराम या लय को प्राप्त होते हैं, उसी ब्रह्म का सदा दर्शन करें ।। ५४–५५

देवाग्नयगारे तरुमूले गुहायां
वसेदसङ्गोऽलक्षितशीलवृत्तः ॥ ६५
— शाटयनीयोपनिषत्, २१

देवालय, अग्नयागार (जहां यज्ञ आदि होते हैं) वृक्ष मूल एवं पर्वत की गुफा में संगवर्जित होकर एवं स्वभाव, चरित्र को कोई समझ न सके इस प्रकार से निवास करें ॥ ५६

निरंधनज्योर्तिवोपशयंतो न चोद्विजेदुद्विजेद्यत्र कुत्र ॥ ५७
— महावाक्यरत्नावली, ९

जिस प्रकार काष्ठ में रक्षित अग्नि उपाशान्त (निर्वाण) होती है, उसी प्रकार विषय रूप ईंधन का त्याग कर मुमुक्षु किसी भी विषय में उत्कण्ठायुक्त नहीं होगा॥ ५७

शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुर्योऽनूचानो ह्यभिजज्ञौ समानः ॥ ६८
— शाटयनीयोपनिषत्, ५

शांत (अंतरिन्द्रिय संयत), दांत (बहिरिन्द्रिय संयत), उपरत (ब्रह्मातिरिक्त अन्यान्य विषयों की चिंता से रहित) तितिक्षु (शीतोष्णादि द्वंद्व वर्जित), श्रद्धा एवं समाधानयुक्त विद्वान सत्पुरुष योगी, ब्रह्मसदृश्य अर्थात् मैं ब्रह्म से अभिन्न हूं इस प्रकार के ज्ञान से संपन्न होते हैं ॥ ५८

त्यक्तेषणो ह्यनृणस्तं विदित्वा
मौनी वसेदाश्रमे यत्र कुत्र । ५९
— शाटयनीयोपनिषत्, ६

उपरोक्त ब्रह्म भाव आरूढ़ मुनि यज्ञ, स्वाध्याय एवं प्रज्ञा (संतान) उत्पादन द्वारा देव ऋषि पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए पुत्रैष्णा, वित्तैष्णा, लोकैष्णा आदि विविध इच्छाओं अर्थात् कामनाओं का त्याग कर किसी भी आश्रम में निवास करें ॥

यमैश्च नियमैश्चैव आसनैश्च सुसंयतः। ६०
नाडीशुद्धिं च कृत्वादौ प्राणायामं समाचरेत् ॥ ६१ ॥
— त्रिशिथिब्राम्हनोपनिषत्, ५३

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा॥ ६२
— वराहोपनिषत् २/८३
निर्विकल्पः प्रसन्नात्मा प्राणायामः समाचरेत् ॥ ६३
— महावाक्यरत्नावली, १

योगशास्त्रोक्त यम व नियम साधनयुक्त एवं आसनसिद्ध होकर नाड़ी शुद्धि के लिए प्राणायाम करें। समस्त चिंताओं का परित्याग कर निर्विकल्प ब्रह्म में प्रसन्नतायुक्त होकर सावधान चित्त से प्राणायाम अनुष्ठान करें ॥ ६०,६१,६२,६३

मरुदभ्यसनं सर्वं मनोयुक्तं समभ्यसेत् ॥ ६४
इतरत्र न कर्तव्या मनोवृत्तिर्मनीषिणा॥ ६५
— शांतिलोपनिषत्, १/५४

जब तक ब्रह्म में मन एकाग्र न हो तब तक रेचक, पूरक एवं कुंभकात्मक प्राणायाम का अभ्यास करें। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी स्थान पर मनोवृत्ति को संयुक्त न करें अर्थात् हमेशा ब्रह्म की चिंता करें ॥ ६४–६५

॥ इति प्रथमं प्रकरणं समाप्तम ॥

सार्धान्तिकबन्धमोक्षवाक्यानि।।२।।

ब्रह्मबोधक समस्त वाक्यों के कथनांतर एवं मोक्ष स्वरुप की अवगति (जानकारी) के लिए वेदोक्त बंधन व मोक्ष वाक्य उद्धृत हैं।

देहदीनात्मत्वेनाभिमन्यते सोऽभिमान आत्मनो बन्धः ।। १

– महाकाव्यरत्नावली, २

तन्निवृत्तिमोक्षः – सर्वसारोपनिषत्, १

अनात्म देह आदि में आत्मा (मैं ही देह, मैं ही इंद्रिय इत्यादि) कहलाने वाला जो भाव होता है उसे अभिमान कहते हैं :– इसी अभिमान को आत्मा का बन्धन कहा जाता है। (अभिमान रूप) उक्त बन्धन की निवृत्ति को मोक्ष कहते हैं ।। १–२

देवमनुष्याद्युपासनाकामसंकल्पो बन्धः ।। ३

– निरालम्बोपनिषत्,

ब्रह्म के अतिरिक्त देवता एवं मनुष्य आदि (शुक्र आदि ऋषि मुनि) की उपासना करने की कामना या संकल्प को बन्धन कहते हैं ।। ३

कर्तृत्वाद्यहंकारसंकल्पो बन्धः।। ४

– निरालम्बोपनिषत्।

मैं सकल विषयों का कर्ता, सभी कर्मफलों का भोक्ता इत्यादि अहंकारयुक्त संकल्पों को बन्धन कहते हैं ।। ४

अणिमाद्यष्टैश्वर्याशासिद्धसंकल्पो बन्धः ।। ५

मुझे अणिमा आदि (अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा प्राप्ति प्रकाम्य, ईशित्व, वशित्व) आठ योग ऐश्वर्यों की सिद्धि हो, इस आशा सिद्ध संकल्प को बन्धन कहते हैं ।। ५

यमाद्यष्टाङ्गयोगसंकल्पो बन्धः।। ६

– निरालम्बोपनिषत्,

यम आदि (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारण, ध्यान और समाधि) अष्टांग योग साधना के संकल्प को बन्धन कहते हैं।। ६

केवलमोक्षापेक्षासंकल्पो बन्धः।। ७

– निरालम्बोपनिषत्

''मेरा अविद्या बन्धन मुक्त हो'' इस प्रकार मोक्ष की कामना करने वाले पुरुष के संकल्प को बन्धन कहते हैं, क्योंकि आत्मा स्वतः ही मुक्त है। मोक्ष कामना का विषय नहीं है।।७

संकल्पमात्रसंभवो बन्धः।। ८

– निरालम्बोपनिषत्,

मोक्ष संकल्प मात्र की उत्पत्ति को बन्धन कहते हैं।। ८

नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्यसंसार सुखदुःख विषय–समस्तक्षेत्रममता बन्धक्षयो मोक्षः।। ९

– निरालम्बोपनिषत्,

नित्य एवं अनित्य वस्तुओं के विचार (विवेक) द्वारा अनित्य संसार के सुख–दुःख आदि विषयों के क्षेत्र अर्थात् उत्पत्ति स्थान के ममतारूपी बंधन के क्षय को मोक्ष कहते हैं।। ९

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।। १०

– ब्रह्मबिन्दुपनिषत्, २

मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है।। १०

बन्धनं विषयासक्तं मुक्तयै निर्विषयं मनः ।। ११

–त्रिपुरातापिन्युपनिषत्५/७

मन की विषयासक्ति ही बंधन है, निर्विषय मन ही मुक्ति का कारण है।। ११

ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते ।। १२

– महोपनिषत् ४/१२

'यह मेरा है' इस प्रकार के ज्ञान द्वारा जीव बद्ध होता है :– 'यह मेरा नहीं है' ऐसी भावना से मुक्त होता है।। १२

ममत्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः ।। १३

– योगचूड़ामनुपनिषत्, ८४

ममता से युक्त होकर जीव पद के वशीभूत होता है :– ममता से रहित होकर केवल अर्थात् मुक्त होता है।। १३

स्वसंकल्पवशात् वद्धो निःसंकल्पाद्विमुज्यते।। १४

– महोपनिषत् २/७०

अपनी वासना द्वारा ही मनुष्य बन्धन में पड़ता है, एवं वासना रहित होकर मुक्त होता है।।१५

द्रष्टा दृश्यवशात् वद्धो दृश्याभावे विमुच्यते। १५

– महोपनिषत् ४/४८

द्रष्टा जीव दृश्य के वश में होने के कारण (दृश्य के अभिमान से युक्त होकर) बन्धन में पड़ता है, और जब दृश्य के अभिमान से रहित होता है तथा "दृश्य ब्रह्मात्मतम, अन्य कुछ नहीं" इस प्रकार का चिंतन करता है तब मुक्त होता है।। १५

इच्छामात्रमविद्येयं तन्नाशो मोक्ष उच्यते।। १६

– महोपनिषत् ४/११६

भोगेच्छामात्र को बन्धस्तत्त्यागो मोक्ष उच्यते ।। १७

– महोपनिषत् ५/९७

चिच्चैत्यकलितो बन्धस्तन्मुक्तौ मुक्तिरुच्यते।। १८

– महोपनिषत् ६/७७

भोगेच्छा मात्र ही अविद्या कहलाती है, विद्या द्वारा भोगेच्छा के त्याग को मोक्ष कहते हैं। भोग की इच्छा मात्र ही बन्धन है एवं भोग की इच्छा का त्याग ही मोक्ष है। जीव के चित्त एवं चित्त के विषयाभिमुख होने को ही बन्धन कहते हैं। अपनी आत्मा के अतिरिक्त चित्त एवं चैत्य विषयों का त्याग ही मुक्ति है।। १६,१७,१८

अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्थापरिग्रहः ।। १९

– महोपनिषत् ४/१११

विषयों के प्रति अनास्था ही निर्वाण अर्थात मुक्ति है, विषयों में आस्था ग्रहण करना ही दुःख अर्थात बन्धन है।। १९

कर्मणा बध्यते जन्तुविद्याया च विमुच्यते ।। २०

– संन्यासोपनिषत् २/९८

कर्म के द्वारा जीव बन्धन में पड़ता है और ज्ञान के द्वारा मुक्त होता है।। २०

स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्भ्रंशोऽहन्त्ववेदनम् ।। २१

– महोपनिषत् ५/२

आत्मा के निज स्वरुप में स्थित होने को मुक्ति कहते हैं, निज स्वरूप से च्युत होना ही अहं की भावना का परिचायक (अर्थात् अविद्या के वश आत्मा में देह आदि की ममता उत्पन्न होती है) है।। २१

चित्ते चलति संसारो निश्चलं मोक्ष उच्यते ।। २२

– योगशिखोपनिषत्, ६/५८

चित्त जब विषयों में चलायमान (आसक्त या वृत्तियुक्त) होता है, तभी संसार अर्थात् बन्धन एवं जब चित्त निश्चल अर्थात निवृत्त होता है तब जीव को मोक्ष मिलता है।। २२

वद्धो ही वासना वद्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयाः ।। २३

– मुक्तिकोपनिषत् २/ ६८

विषय–वासना बद्ध होना ही बन्धन, वासना का क्षय मोक्ष होता है।। २३

पदार्थभावनादाढ़ं बन्धः इत्याभिधीयते ।। २४

वासनातानवं ब्रह्मन्मोक्ष इत्यभिधीयते ।। २५

महोपनिषत् २/४१

विषय–भावना की दृढ़ता को बन्धन कहते हैं एवं विषय वासना का क्षय करने वाले ब्रह्म को मोक्ष कहते हैं।। २४–२५

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताहे न भूतले ।। २६

सर्वाशसंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतिष्यते।। २७

– अन्नपूर्णोपनिषत् २/२३

आकाश के तल पर, पाताल या भूतल में मोक्ष नहीं है:– निर्विषय होने के लिए सभी आशाओं का क्षय होने पर चित्त का जो क्षय (वृत्ति रहित होना) होता है, उसे ही मोक्ष कहते हैं।। २६–२७

मोक्षो मेऽस्त्विति चिन्ताऽन्तर्जाता चेदुत्थितं मनः।। २८

मननोत्थे मनस्येष बन्धः सांसारिको दृढः ।। २९

– अन्नपूर्णोपनिषत् २/२४

'बन्धन की उपेक्षा कर आत्मा का मोक्ष हो' इस प्रकार मन में उठने वाली चिंता ही सांसारिक बन्धन है।। २८–२९

तदमार्जनमात्रं हि महासंसारतां गतम् ।। ३०
तत्प्रमार्जनमात्रं तु मोक्ष इत्यभिधीयते ।। ३१
– अन्नपूर्णोपनिषत् ४/५६

मन की इसी अशुद्धि के कारण महासांसारिकता (बन्धन का भाव) उपस्थित होती है एवं उसी मन की शुद्धि मात्र को ही मोक्ष कहते हैं (सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्यो कैवल्यमिति योगदर्शनेः) ।। ३०–३१

।। इति द्वितीयं प्रकरणं समाप्तं।।

सार्धान्तिका विद्वन्निदावाक्यानि ।। ३

अनन्तर अविद्वान अर्थात् अविद्या ग्रंथ के स्वरुप की जानकारी के लिए निंदा से संबक्षधित समस्त वाक्य उद्धृत हैं।

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽ
हमस्मीति न स वेद यथा पशुः ।। १
– बृहदारण्यकोपनिषत्, १/४/१०

जो आत्मा से भिन्न हैं वही ईश्वर या परमात्मा हैं एवं उनसे भिन्न मैं जीव या देहधारी, और हम दोनों (जीव व ईश्वर से) जगत भिन्न है, इस प्रकार चिंतन कर एवं अपने से भिन्न अन्य देवताओं की उपासना करे, वह नहीं जानता कि वह स्वयं मूर्ख पशुमात्र है।।१

अत्र भिदामिव मन्यामानः शतधा सहस्त्रधा
भिन्नो मृतोः स मृत्योमापोति ।। २

जो इस भेद शून्य ब्रह्म से जगत, जीव व परमेश्वर के परस्पर भेद को स्वीकार करे, अपने स्वरूप से अनभिज्ञ वह मूढ़ अपने स्वरूप सहित शतसहस्त्र प्रकार से स्वयं अविद्याग्रस्त होकर पुनः–पुनः जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता है (अर्थात् जन्म और मृत्यु के अधीन होकर बार–बार संसार में आवागमन करता है) ।। २

कर्तृत्वाद्यहंकारभावारुढो मूढः ।। ३
– निरालम्बोपनिषत्।

अपनी बुद्धि से अविद्या–विकल्पित होकर शरीर में अहं का स्थापन कर 'मैं करता हूँ' इस आकार, अहंकार – भावना से आरूढ़ अविद्याग्रस्त व्यक्ति को मूढ़ कहते हैं।। ३

मृत्योः स मृत्योमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।। ४
– कठोपनिषत्, २/९/१०

जो व्यक्ति ब्रह्म से अभिन्न इस जगत एवं जीव में ब्रह्म से भिन्नता (भेद दर्शन) करता है, वह व्यक्ति जन्म मरण रूपी गति को बार–बार प्राप्त होता है।। ४

अनुभूतिं बिना मूढ़ो बृथा ब्रह्मणि मोदते।। ५
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत् ।। ६

– मैत्रेय्युपनिषत्, २/२२

जिस प्रकार वृक्ष की शाखा के अग्र भाग में स्थित फल के प्रतिबिम्ब का आस्वादन मिथ्या है उसी प्रकार मूढ़ व्यक्ति 'स्वयं को ब्रह्म' न समझकर ब्रह्म में व्यर्थ ही विषय आनंद का भोग करता है।। ५,६

अष्टांङ्ग च चतुष्पादं त्रिस्थानं पञ्चदैवतम् ।। ७
ओंकारं यो न जानाति ब्रह्मणो न भवेत्तु सः।। ८

– ध्यानबिंदुपनिषत्। १३–१४

जो व्यक्ति अष्टांग, चतुष्पद, त्रिस्थान एवं पंचद्वैतयुक्त ओंकार को नहीं जानता वह कभी भी ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) नहीं हो सकता।। ७–८

(अष्टांग– अ, उ, म, अर्द्ध मात्र, नाद, बिंदू, कला, कलातीत। चतुष्पाद– विश्व तेजस, प्राज्ञ एवं तुर्य; अथवा विराट, सूत्र, बीज, तुर्य।
त्रिस्थान – कैलाश, बैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, अथवा सत्व, रज, तम; अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। पंचदैवत – ब्रह्मा, विष्ण, रूद्र, ईश्वर, सदाशिव।)

अतिवर्णाश्रमं रूपं सच्चिदानन्दलक्षणम् ।। ९

– बराहोपनिषत्, २/६

यो न जानाति सोऽविदान्कदा मुक्तो भविष्यति ।। १०

– बराहोपनिषत्, २/७

जो व्यक्ति वर्णाश्रम से अतीत सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म के रूप को नहीं जान पाता वह अविद्वान व्यक्ति क्या किसी काल में मुक्त होगा? अर्थात् कभी भी मुक्त नहीं होगा।। ९–१०

कुशला ब्रह्मवार्तायां वःत्तिहीनाः सुरागिणः । ११
तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ।। १२

– तेजोबिन्दूपनिषत् १/४६

स्व के अतिरिक्त (अपने से भिन्न) शरीर आदि में आत्म बुद्धि समझ कर सर्वत्र 'यह मेरा हो, यह मेरा हो' इस प्रकार विषयासक्त व्यक्ति ब्रह्म वार्ता में कुशल होकर भी ब्रह्म में वृत्तिहीन अर्थात् ब्रह्म ज्ञान रहित होने के कारण अपने–अपने अज्ञान के वश बार–बार इस संसार में आवागमन करते हैं।। ११–१२

काष्ठदण्डो धृतोयेन सर्वाशी ज्ञान वर्जितः ।। १३

– परमहंसोपनिषत्

जो यति केवल काष्ठदण्ड धारण कर एवं केवल उदर परायण हो वह ज्ञान से वर्जित अर्थात् अज्ञ होता है।। १३

स्वायत्तमेकान्तहितं स्वेप्सिततत्यागवेदनम् ।। १४
यस्य दुष्करतां यातं धिक्तं पुरुषकीटकम्।। १५

– महोपनिषत् ४/८९

अपने–अपने अज्ञान से "यह मेरा हो, यह मेरा हो" आदि अपनी इच्छाओं के सम्मोह उत्पन्न होते हैं, लेकिन 'ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं' इस प्रकार के ज्ञान द्वारा उक्त सभी कामनाएं परित्यक्त होती हैं। उक्त समस्त कामनाओं के त्याग सूचक सभी के आयत्त, एकमात्र हितकर ब्रह्मज्ञान जिस व्यक्ति के लिए दुसाध्य हो उठे उस पुरुषाधम को धिक्कार है।। १४–१५

अद्वितीयब्रह्मतत्त्वं न जानन्ति यथा तथा।। १६
भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क्व मुक्तिः क्वेह वा सुखम् ।। १७

– वाराहोपनिषत्, २/५७

जो लोग अद्वितीय ब्रह्मतत्व को नहीं जान पाते वे सभी विषयों में भ्रांत होते हैं; अतएव उनकी मुक्ति कहां है या सुख ही कहां है? १६–१७

अज्ञानोपहतो वाल्यो यौवने वनिताहतः ।। १८
शेषे कलत्रचिंतार्तः किं करोतिनराधमः ।। १९

– महोपनिषत् ६/२३

मनुष्य बाल्यकाल में अज्ञान द्वारा आवृत्त होता है, यौवन में स्त्री द्वारा ज्ञान नष्ट होता है एवं वृद्धावस्था में स्त्री पुत्रों की चिंता से प्रपीड़ित होता है। इस प्रकार के नराधम किस कार्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं ? १८–१९

इच्छाद्वेषसम्मुखेन द्वंदमोहेन जन्तवः।।२०
धराविवर मग्नानां कीटानां समतां गतः।।२१

–संन्यासोपनिषत् २/३९

अज्ञानी जीव अपनी–अपनी इच्छा द्वेष से उत्पन्न शीतोष्ण– सुख–दुख रूपी द्वंद से मोहयुक्त होकर धराविवर स्थित कीटों की भांति केवल असार मात्र (अर्थात् उनका जीवन विफल है)हैं।। २०–२१

।।इति तृतीयं प्रकरणम् समाप्तम्।।

सार्धान्तिकजगन्मिथ्यावाक्यानि।।४

यहां जगत के मिथ्यास्वरूप की अवगति (जानकारी) के लिए समस्त जगन्मिथ्या वाक्य उद्धृत् हैं।

न्नान्यत्किंचन मिषत्।।
– एतरेयोपनिषत् १/१/१

ब्रह्म से भिन्न स्थावर जगन्मात्मक अन्य कुछ भी नहीं है।।१

वाचारम्भनं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्योव सत्यम्।।२
–छान्दग्योपनिषत् ६/१/४

मृत्तिका (मिट्टी) ही सत्य है, मृत्तिका के सभी विकार (घटशरावादि) मिथ्या या नाम मात्र हैं। मृत्तिका ही घट आदि का परमार्थिक रूप है, उसके अन्य संस्थान (घट आदि रूप) काल्पनिक हैं।।२

अतोऽन्यदार्तं ।। ३
– बृहदारण्यकोपनिषत्, ३/४/२

ब्रह्म से भिन्न समस्त वस्तुएं नश्वर या मिथ्या हैं।।३

न तु तद्वितीयमस्ति।। ४
– बृहदारण्यकोपनिषत्, ४/३/२३

ब्रह्म का कोई द्वितीय नहीं है।।४

नात्र काचन भिदास्ति नैव तत्र काचन भिदास्ति।।५

ब्रह्म में कोई प्रकार भेद नहीं है (अर्थात् वे सजातीय विजातीय– स्वगत–भेद से रहित हैं)।।५

सर्वं विकारजातं मायामात्रम्।।६

विकार जात समस्त वस्तु मायामात्र (अर्थात् मिथ्या) हैं ।।६

सर्वत्रं नह्यस्ति द्वैतसिद्धिः ।।७
नास्ति द्वैतं कुतो मर्त्यं।।८

ब्रह्म की द्वैतसिद्धि कहीं भी नहीं है। जब अखण्ड एवं एक रस ब्रह्म में जगत्

एवं जीवादि–भेदयुक्त जगत नहीं है, तब उसमें मनुष्यादि अवास्तव भेदरूप किस प्रकार संभव हो सकते हैं?।।७–८

प्रपञ्चो यदि विद्यते निवर्त्तते न संशयः।।९

यदि शशश्रृंग की तरह अलीक प्रपंच संभव हो, तो 'ब्रह्म से भिन्न अन्य कुछ नहीं है'

इस प्रकार के ज्ञान से प्रपञ्चज्ञान की निश्चितरूप से निवृत्ति होती है।।९

मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।।१

– आगम प्रकरणम् (माण्डुक्योपनिषत् कारिका),१७

इस परिदृश्यमान द्वैत प्रपञ्च को मात्र मायाकार्य कहें व मायामात्र ही समझें; किन्तु परमार्थतः प्रपञ्च को अद्वैत समझें अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, ऐसा समझें।।१०

विकल्पो विनिवर्त्तते कल्पितो यदि केनाचित्।।११

अगर कोई अज्ञान वश प्रतियोगिता रहित ब्रह्म में गुरु, शिष्य शास्त्रादिरूप भेदबुद्धि की कल्पना करे, तो ऐसा होने पर ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नही है, इस प्रकार गुरु के उपदेश द्वारा उनकी निवृत्ति अवश्य होती है।।११

उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते।।१२

– आगम प्रकरणम् (माण्डुक्योपनिषत् कारिका), १७

उपदेश द्वारा ब्रह्मज्ञान होने पर द्वैतभाव विदूरित (दूर) होता है।।१२

द्वितीयकारणाभावादनुत्पन्नमिदं जगतं।।१३

–महोपनिषत् ५/५८

जगत का ब्रह्म से भिन्न कोई दूसरा कारण न होने से यह जगत उत्पत्तिशील नहीं है, क्योंकि ब्रह्म ही विवर्त के रूप में जगत के आकार में प्रतिभात होते हैं।।१३

यथैवेदं नभः शून्यं जगच्छून्यं तथैव हि।।१४

–महोपनिषत् ५/१८४

जिस प्रकार आकाश शून्य है, उसी प्रकार जगत भी शून्य है अर्थात् ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है।।१४

इदं प्रपञ्चं यत्किंचित् यद्यज्जगति विद्यते।। १५

दृश्यरूपं च दृग् रूपं सर्वं शशविषाणवत् ।।१६

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/७५

इस दृश्यमान जगत में दृश्य और द्रष्ट रूप में जो कुछ भी प्रपञ्च दिखाई देता है, वह समस्त ही शशक (खरगोश) के श्रृंग की भांति अलीक समझें।।१५–१६

इदं प्रपञ्चंनास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं क्वचित् ।। १७।।

चित्तं प्रपञ्चमित्याहुर्नास्ति नास्त्येव सर्वदा।। १८

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/३२

इन प्रपञ्चों का अस्तिव नहीं है एवं ये सब उत्पन्न या विद्यमान भी नहीं हैं। श्रुति ने चित्त को ही प्रपञ्च कहा हैः चित्त से भिन्न अन्य कोई प्रपञ्च नहीं है एवं ब्रह्म के अतिरिक्त प्रपञ्च कल्पना का मूल चित्त भी विद्यमान नहीं रहता।।१७–१८

मायाकार्यादिकं नास्ति माया नास्ति भयं नहि। १९

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/३३

परंब्रह्माहमस्मीति स्मरणस्य मनो नहि।। २०

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/३०

माया के कार्यादि नहीं हैं। जब माया ही नहीं है तब माया के कारण द्वैतज ज्ञान का भय भी नहीं है। जब ब्रह्म से भिन्न मायाकार्य नहीं, तब 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार स्मरण करने वाले मन का भी अस्तित्व नहीं है।। १९–२०

वन्ध्याकुमारवचने भीतिश्चेदस्ति किंचन।। २१

शशशृङ्गेण नागेन्द्रो मृतश्चेञ्जगदस्ति सत्। २२

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/७३–७४

अगर वन्ध्या को पुत्र के वचनों का भय उत्पन्न होने की सम्भावना हो, तभी यह दृश्य जगत भी संभव हो सकता है अर्थात् जिस प्रकार वन्ध्या को पुत्र होना असंभव है एवं उस कल्पित पुत्र के वचनों का भय होना

भी असंभव है, उसी प्रकार जगत का अस्तित्व भी मिथ्या है। शशक के श्रृंग स्वरूप अंकुश द्वारा बिद्ध होकर यदि हाथी की मृत्यु होना संभव हो, तभी जगत का अस्तित्व संभव हो सकता है अर्थात् शशक को श्रृंग नहीं होगा एवं उस कल्पित श्रृंग से बिद्ध होकर हाथी की मृत्यु होने की भी संभावना नहीं है; उसी प्रकार जगत का अस्तित्व भी पूर्ण रूप से अवास्तव या मिथ्या है।। २१–२२

मृगतृष्णाजलं पीत्वा तृप्तश्चेदस्तिवदं जगत् ।। २३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/७४
गन्धर्वनगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा ।। २४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/७५

अगर मृगतृष्णा के जल का पान करने से प्यास की निवृत्ति होती हो, तभी जगत का होना संभव हो सकता है। (रेगिस्तान में सूर्य की प्रखर किरणों के गिरने पर उनके बालू पर प्रतिफलित होने से 'जल विद्यमान है' इसका भ्रम जन्म लेता है, एवं मृग प्यास से कातर होकर उस जल का पान कर प्यास बुझाने के लिए दौड़ते हैं; जल की वह छाया अलीक और गमनशील होने के कारण उसके पान द्वारा उनकी प्यास की निवृत्ति व तृप्ति जिस प्रकार असंभव है, उसी प्रकार जगत का अस्तित्व भी पूरी तरह मिथ्या है। यदि गंधर्वनगर सत्य है, तो जगत भी सर्वथा सत्य है; लेकिन गंधर्वनगर भी अलीक है इसलिए जगत भी मिथ्या है)।। २३–२४

गगने नीलिमासत्ये जगत्सत्यं भविष्यति ।। २५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/७६
मासात्पूर्वं मृतो मर्त्यो ह्यागतश्चेज्जगभ्दवेत् ।।२६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/८०

अगर आकाश का नीला रंग सत्य है एवं एक माह पूर्व मृत, व्यक्ति अगर पुनः जीवित होकर वापस लौटे तो इस जगत का अस्तित्व भी संभव हो सकता है; किन्तु जिस प्रकार आकाश का नीला रंग सत्य नहीं है एवं मृत व्यक्ति का जीवित होकर पुनः लौटना संभव नहीं है: उसी प्रकार जगत

का अस्तित्व भी सर्वथा मिथ्या है।। २५–२६

गोस्तानादुद्भव क्षीरं पुनरारोपणे जगत्।।२७
–तेजोबिन्दुपनिषत् ६/८१
ज्वालाग्निमण्डले पद्मवृद्धिश्चेदस्तित्वदम्।।२८
–तेजोबिन्दुपनिषत् ६/८४
ज्ञानिनो हृदयं मूढैर्ज्ञातं चेत्कल्पेनं तदा ।।
–तेजोबिन्दुपनिषत् ६/९६

गाय के स्तन से दूध का दोहन करने के बाद अगर पुनः उस दूध को स्तन में आरोपित किया जा सके, यदि प्रज्जवलित अग्नि में पद्म की वृद्धि संभव हो एवं यदि मूर्ख गण ज्ञानी मनुष्य के हृदय को जानने में समर्थ हो सकें, तो ऐसा होने पर जगत का अस्तित्व भी संभव हो सकता है; किन्तु जिस प्रकार यह सब असंभव है, उसी प्रकार जगत का अस्तित्व भी मिथ्या का कल्पनामात्र है।। १७, २८, २९

अजकुक्षौ जगन्नास्ति ह्यात्मकुक्षौ जगन्नहि ।। ३०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/९९
सर्वथा भेदकलं द्वैताद्वैतं न विद्यते ।। ३१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/९९

चतुरानन ब्रह्मा के उदर में अथवा निज ब्रह्मस्वरूप में या द्वैतात्मकता में, कहीं भी जगत विद्यमान नहीं है।।३०

सर्वदा भेदज्ञान के कारण द्वैत एवं अद्वैत ज्ञान का अस्तित्व नहीं है अर्थात् ब्रह्म से भिन्न अन्य कोई भी वस्तु नहीं है।। ३१

नास्ति नास्ति जगत् सर्वं गुरुशिष्यादिकं नहि।।३२
–महावाक्य रत्नावली,४
सच्चिदानन्दमात्रोऽहमनुत्पन्नमिदं जगत्।। ३३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/६३

दृश्य जगत भी नहीं है एवं गुरुशिष्यादि संबंध भी नहीं हैं। मैं सच्चिदानंद स्वरूप मात्र हूँ एवं इस जगत में अनुत्पन्न अर्थात् मेरे रहने से ही जगत है एवं मेरे न होने पर जगत भी संभव नहीं है।। ३२–३३

।। इति चतुर्थ प्रकरणं समाप्त

सार्धान्तिकोपदेशवाक्यानि॥५॥

जगत मिथ्या है इस ज्ञान लाभ के पश्चात् विशुद्ध चित्त ब्रह्मवेत्ता के 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए समस्त वेदोक्त उपदेशवाक्य उद्धृत् हैं।

स य एषोहणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं सत्यं
स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो॥१
—छान्दग्योपनिषत्, ६/८/७

यह जो अणिमा अर्थात् सुक्ष्मतम परम कारण है, यह समस्त जगत एतदात्मक अर्थात् अखिल जगत ब्रह्ममय है (जगत की कोई भी वस्तु ब्रह्म से भिन्न नहीं है)। एकमात्र परम कारण ब्रह्म ही सत्य है, वही (व्यापक रूप में) आत्मा है। हे श्वेतकेतो! तुम्हीं वह परम वस्तु हो (उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है)॥ १

अभयं वै जनक प्राप्तोऽसी ॥ २
— वृहदारण्यकोपनिषत् ४/२/४

हे जनक! तुम अभयस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हुए हो अर्थात् तुम ब्रह्म स्वरूप हो गए हो॥२

ब्रह्मचर्यमहिंसां चापरिग्रहं च सत्यं च
यत्रेन हे रक्षतो३ हे रक्षतो३ हे रक्षत इति ॥ ३
—अरुणिकोपनिषत्, ३

हे शिष्य! ब्रह्मचर्य (अष्टाङ्ग मैथुन वर्जन), अहिंसा (मन, शरीर एव वाक्य द्वारा किसी की हिंसा न करना), अपरिग्रह (अपने शरीर की रक्षा करने के लिए उपयोगी द्रव्यों के अलावा अन्य द्रव्य ग्रहण न करना), एवं सत्य (कायमनोवाक्य से यथार्थ व्यवहार करना) का अति यत्न पूर्वक पालन करना॥३

तत्वमसि त्वं तदसि॥ ४
— पैङ्गलोपनिषत्, ३/१

तुमही ब्रह्मा हो एवं ब्रह्मा ही तुम हो ॥४

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्॥५

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥६
—केनोपनिषत्, १/५

जिसका मन के द्वारा मनन न किया जा सके, किन्तु जो मन का एकमात्र वाञ्छनीय है, उसे ही ब्रह्म समझें। तुम जिस प्रत्यक्ष वस्तु की उपासना करते हो वह ब्रह्म नहीं है॥५–६

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् । ७
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ॥ ८
—कैवल्योपनिषत्, १/१६

जो परम ब्रह्म एवं सबकी आत्मा अर्थात् वाह्याभ्यंतर में व्याप्त है, वही विश्व का आश्रय है। वही सूक्ष्म से सूक्ष्मतर एवं नित्य वस्तु है। तुम्हीं वह ब्रह्मस्परूप हो॥ ७/८

अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यकुम्भ इवाम्बरे।
अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णकुम्भ इवार्णवे॥ १०
— वराहोपनिषत्, ४/१८

आकाशस्थित शून्य कुम्भ की भांति निर्विशेष के हेतु वही अंर्तवाह्य–कल्पनाशून्य होकर वाह्याभ्यन्तर देश में सर्वत्र विराजित हैं॥९

वही ब्रह्म सबके अंतर एवं वर्हिदेश में पूर्णरूप में विराजित हैं। वे समुद्र में स्थित पूर्णकुम्भ की भांति सर्वत्र परिपूर्ण हैं॥१०

मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव॥ ११
भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टं तन्मयो भव ॥ १२
— वराहोपनिषत्, ४/१९

हे शिष्य! जो दृश्य ग्राह्य हैं उन्हें ग्रहण मत करना, ग्राहक भाव ('मैं द्रष्टा हूँ' ऐसी भावना को) को भी ग्रहण मत करना। समस्त भावनाओं का (ज्ञान, ज्ञेय व ज्ञाता इस त्रिपुटि का भाव) त्याग कर जो ब्रह्मभाव अवशिष्ट रहे उसी में तन्मय हो जाओ अर्थात् ब्रह्ममय हो जाओ॥११–१२

द्रष्टृदर्शनद्दश्यानि त्यक्त्वा वासनया सह॥ १३
दर्शनप्रथ माभासमात्मानं केवलं भज॥ १४
— वराहोपनिषत्, ४/२०

वासना सहित द्रष्टा दर्शन एवं दृश्य ज्ञान का त्याग कर केवल परमात्मा का भजन करो। 'स्वातिरिक्त द्रष्टा जीव दर्शन घटादि विषयों को एवं दृश्य घटादि' इस त्रिपुटि ज्ञान का प्रकाशक भी परमात्मा ही है। 'मैं उसी परमात्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार के ज्ञान से युक्त हो जाओ।।१३–१४

चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम् ।। १५
द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं महामुने ।। १६
– महोपनिषत्, ४/५८

आकाश त्रिविध है– चिदाकाश, चित्ताकाश, भूताकाश। हे महामुने! चिदाकाश (सदा चित्तरूपेण आकाश में अर्थात् सदा चित्‌रूप में प्रकाश प्राप्त करें), इसी लिए चिदाकाश, चित्ताकाश एवं भूताकाश वर्जित है।'' ब्रह्म ही सदा चित्‌रूप में प्रतिभात होते हैं' एवं 'ये दोनों आकाश ही चिदाकाश के अंतर्गत हैं' ऐसा समझें।। १५–१६

ध्यानतो हृदयाकाशे चिति चिच्चरत्रधारया ।। १७
मनो मारय निःशङ्कं त्वां प्रबध्नन्ति नारयः ।। १८
– महोपनिषत्, ४/९३–९४

'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस ध्यान द्वारा हृदयाकाश स्थित चैतन्य में चित्‌रूप चक्रधारा द्वारा मन को निर्दयरूप से दमन करें; क्योंकि मन के वशीभूत होने पर ही कामादि रूपों में (स्रक, चन्दन, वनितादि) रिपुगण ब्रह्मनिष्ठ को बंधन में डालने में समर्थ नहीं होते।। १७–१८

भोगैकवासनां त्यक्तवा त्यज त्वं भेदवासनाम्। १९
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखी भव।। २०
– महोपनिषत्, ४/१०९

विषयभोग की वासना का त्याग कर जगत एवं जीव ब्रह्म की भेद वासना का भी त्याग करो। इसके पश्चात् भाव एवं अभाव दोनों का त्याग करना। उसके पश्चात् भाव एवं अभाव दोनों का त्याग कर निर्विशेष ब्रह्म स्वरूप में स्थिर होना।। १९–२०

त्यज धर्ममधर्मन्च उभे सत्यानृते त्यज।। २१
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्तयज।।२२
संन्यासोपनिषत्, २/१२

(श्रुतिस्मृतिविहित) धर्म एवं (श्रुतिस्मृति प्रतिषिद्ध) अधर्म, सत्य एवं मिथ्या दोनों का त्याग करो। सत्य एवं मिथ्या दोनों प्रकार के ज्ञान का त्याग कर जिस अज्ञान द्वारा मिथ्या ज्ञान का उदय होता है, उसका त्याग करो एवं ब्रह्म का चिंतन करो।।२१–२२

आत्मन्यतीते सर्वस्मात्सर्वरूपेऽथ वा तते।। २३
को बन्धः कश्च वा मोक्षो निर्मूलं मननं कुरु।। २४
– अन्नपूर्णोपनिषत्, २/२५

समस्त ही ब्रह्म है। 'इस सिद्ध सर्वव्यापक निर्विशेष ब्रह्म में अविद्या जनित बंधन कहां है' एवं ज्ञान जनित मुक्ति ही कहां है' इस बंधनमोक्षज्ञान से रहित मननशील हो जाओ अर्थात् स्वातिरिक्त बंधन एवं मोक्ष कल्पना को मिथ्या समझो।।२३–२४

आशा यातु निराशात्वमभावं यातु भावना।। २५
अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः ।। २६
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/३८

अपनी भोग की आशा को निराशा (वैराग्य) में परिणत करो एवं भावना को ब्रह्मातिरिक्त विषयों की अभावना में परिणत करो। मन को वृत्तिरहित करो एवं आसक्ति वर्जित होकर जीवन धारण करो।। २५–२६

एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रममलं ततम्।।२७
खादप्यतितरां सुक्ष्मं तअब्रह्मासि न संशयः।।२८

आदि एवं अंत रहित एकमात्र, चित्मात्र, शुद्ध सर्वव्यापक, आकाश से भी अति सूक्ष्म ब्रह्म तुम्हीं हो, इसे निश्चत जानो।। २७–२८

रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम् ।। २९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/५१
संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।। ३०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/५२

विष्णु सृष्टि के रक्षक (पालनकर्त्ता), ब्रह्मा सृष्टि के कारण (कर्त्ता) एवं रुद्र संहारकर्ता हैं इस प्रकार के ज्ञान को मिथ्या जानें।२९–३०

मत्त्यक्तं नास्ति किंचिद्वा मत्त्यक्तं पृथिवी च वा।। ३१

मयातिरिक्तं यद्यद्वा तत्तन्नास्तीति निश्चिनु।। ३२
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१९–२०

मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है एवं मेरे अतिरिक्त पृथ्वी भी नहीं है। मेरे अतिरिक्त जो कुछ भी है उसका कोई अस्तित्व नहीं है, इसे निश्चत जानें।।३१–३२

अनात्मोति प्रसंगो वा अनात्मेति मनोहपि वा ।।३३
अनात्मेति जगद्वयापी नास्तानात्मेति निश्चिनु ।। ३४

अनात्मा अर्थात् आत्मा से भिन्न प्रसंग (वार्त्ता), आत्मा से भिन्न मन, एवं आत्मा से भिन्न जगत भी नहीं है, इसे निश्चित समझें।।३३–३४

आदिम ध्यावसानेषु दुःखं सर्वमिदं यतः।। ३५
तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्वनिष्ठो भवानघ।। ३६
— अक्ष्युपनिषत्, ४८

क्योंकि आदि मध्य एवं अंत में समस्त ही दुःखमय है, अतएव हे निष्पाप! समस्त प्रपञ्चों का परित्याग कर तुम ब्रह्मनिष्ठ हो जाओ।। ३५–३६

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरात्मविस्मृतेः ।। ३७
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि।। ३८
— अध्यात्मोपनिषत्, ५

निद्रा का, लोकवार्त्ता का (लौकिक व्यवहार का), शाब्दिक ज्ञान का एवं आत्मविस्मृति का अवसर न देकर यह कल्पना करें कि आपकी आत्मा ब्रह्म में शामिल है।। ३७–४०

सर्वव्यापारमुत्सृज्य ह्यह ब्रह्मेति भावय ।। ३९
अहंब्रह्मेति निश्चित्य अहंभावं परित्यज ।। ४०
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/१०४

जगत के समस्त व्यापारों का परित्याग कर मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार का चिंतन करें। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार निश्चय कर अपने शरीर आदि के अहंभाव का त्याग करें।। ३९–४०

घटाकाशं महाकाश इवात्मानं परात्मनि ।। ४१
विलाप्याखण्डभावेन तूष्णीं भव सदा मुने।।
— अध्यात्मोपनिषत्, ७

जिस प्रकार घटाकाश महाकाश में विलुप्त होता है, हे मुने! उसी प्रकार अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर तुम परमात्मा से अखण्ड अर्थात् 'तुम और परमात्मा एक हो' ऐसी भावना से युक्त होकर तूष्णीम्भाव का अवलम्बन करें।।४१–४२

चिदिहास्तीति चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च।। ४३
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति भावय।। ४४
— याज्ञवल्क्योपनिषत्, २३

जो कुछ भी दृश्य और अदृश्य वस्तु हैं, वह चैतन्यमात्र है, समस्त जगत चिन्मय है। ऐसा चिंतन करें कि समस्त चित्त एवं दृश्यलोक चैतन्यमात्र है।।

सत्यचिद्घनमखाण्डमद्वयं
सर्वदृश्यरहितं निरामयम्।। ४५
यत्पदं विमलद्वयं शिवं
तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय ।। ४६
— वराहोपनिषत्, ३/६

जो सत्य, घनीभूत चित्स्वरूप, अखण्ड अद्वय, समस्त दृश्य रहित, स्थूल–सूक्ष्म एवं कारण शरीर के अभाव हेतु निरामय (रोगरहित) है, जो प्रार्थना का पद, विमल एवं शिवस्वरूप है, मैं वही ब्रह्म हूँ, ऐसी भावना से युक्त होकर मौन व्रत का अवलम्बन करें।। ४५–४६

जन्ममृत्युसुखदुःखवर्जितं
जातिनीतिकुलगोत्रदूरगम् ।। ४७
चिद्विवर्तजगतोऽस्य कारणं
तत्सदाऽहमिति मौनमाश्रय।। ४८'
— वराहोपनिषत्, ३/७

यह जगत जन्म–मृत्यु, सुख–दुख से रहित, जाति, नीति, कुल एवं गोत्र

वर्जित, चित्स्वरूप ब्रह्म का ही विवर्त्त है एवं इस जगत को कारण जो ब्रह्म है, मैं उसी ब्रह्मस्वरूप हूँ, इस प्रकार की भावना से युक्त होकर मौन का आश्रय करें।। ४७–४८

पूर्णमद्वयमखण्डचेतनं
विश्वभेदकलनादिवर्जितम्।। ४९
अद्वितीयपरसंविदंशकं
तत्सदाऽहमिति मोनमाश्रय।। ५०
– वराहोपनिषत्, ३/८

मैं पूर्णस्वरूप, अद्वय, अखण्ड, चेतनस्वरूप, प्रपञ्चादि भेद रहित, परमज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा जानकर मौन का आश्रय लें।।४९–५०

स्वात्मनोहन्यतया भातं चराचरमिदं जगत।। ५१
स्वात्ममात्रतया बुद्धा तदस्सितिविभारय।।५२

निज आत्मा से भिन्न जो जगत प्रतिभात होता है वह निज आत्मा ही है, ऐसा चिंतन कर मैं ही इस जगत स्वरूप हूँ, ऐसी भावना रखें।। ५१–५२

विलाप्य विकृतिं कृत्स्नां संभवब्यत्याय क्रमात्।।५३
परिशिष्टन्च चिन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तय।।५४

प्रकृतिजात विकृति का सम्पूर्ण विलोप कर आत्मा से जगत की उत्पत्ति एवं आत्मा में ही जगत का लय होता है, इस क्रम का अवलम्बन कर उत्पत्ति एवं प्रलय के बाद अवशिष्ट एकमात्र चैतन्यमय ब्रह्म ही रह जाते हैं (ब्रह्म में ही प्रकृति एवं प्रकृति से उत्पन्न विकार जात भूतभौतिक समस्त पदार्थों का लय कर मैं ही अवशिष्ट चिन्मात्र एवं आनन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ) ऐसा चिंतन करें।।५३–५४

इति पंचमं प्रकरण समाप्तम्।।

सार्धान्तिकजीवब्रह्मैक्यवाक्यानि।।६

स यश्चायं पुरुषे।।१
– तैत्तरीयोपनिषद;२/४

वही सर्वव्यापक ब्रह्म जीव समूह में प्रत्यागात्मरूप में विराजमान हैं।।१

यश्चासावादित्यो।। २
स एकः ।। ३
– तैत्तरीयोपनिषत् २/८

वही सर्वव्यापक ब्रह्म आदित्यमण्डल में विराजमान हैं, वे ही एकमात्र अर्थात् अद्वितीय हैं।।२–३

सत्यात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मैत्मवात्र ह्योव न विचिकित्साम्।।
–नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, नवम खण्ड

एकमात्र ब्रह्म ही सत्यस्वरूप एवं जीवों के आत्मारूप में विराजमान है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।। ४

त्वं ब्रह्मासि।। ५ – पैंगलोपनिषत्, ३/१
अहं ब्रह्मानास्मि।। ६ – वृहदारण्यकोपनिषत्, १/४/१०
आवयोरन्तरं न विद्यते तमोवाहमहमेव त्वम्।।७
– त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्६/१

हे जीव, तुम्हीं ब्रह्म हो। मैं भी ब्रह्म हूँ।। ब्रह्म एवं जीव (भगवान एवं भक्त) हम दोनों के बीच कोई भेद नहीं है। तुम मैं हूँ और मैं तुम हो।।५,६,७

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु ।। ८
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति।। ९
– मुण्डकोपनिषत् ३/२/७

पंचदश कला (नामरूपादि उपाधि) अपने–अपने कारणस्वरूप निज–निज अधिष्ठाता देवता में लय को प्राप्त होते हैं। समस्त कर्म, विज्ञानमय कोशयुक्त जीवात्मा एवं विश्वविराट हिरण्यगर्भा आदि अपनी–अपनी उपाधिलोप के बाद अव्यय परम ब्रह्म में एक ही भाव को प्राप्त होते हैं।। ८–९

येनेक्षते श्रृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च। १०
स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ ११
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/१

जिसके द्वारा श्रवण किया जाए, गंध ग्रहण किया जाए, बात की जाए एवं स्वादिष्ट तथा अस्वादिष्ट रसों का ज्ञान होता है उसे प्रज्ञानस्वरुप ब्रह्म कहते हैं (प्रज्ञानं ब्रह्मेति श्रुतिः)।

चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु ॥ १२
चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि॥ १३
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/२

ब्रह्म से इंद्र आदि देवता हैं, मनुष्य एवं गाय आदि पशु सबमें एक मात्र चैतन्यमय ब्रह्म ही प्रज्ञानस्वरुप में विराजमान हैं। वही प्रज्ञानस्वरुप ब्रह्म मुझमें भी विराजमान है अर्थात् समस्त प्रज्ञानस्वरुप को ब्रह्म समझें। १२–१३

परिपूर्णः परात्मास्मिन्देहे विद्याधिकारिणि। १४
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते॥ १५

– शुकरहस्योपनिषत्, ३/३

स्वतः पूर्णः परात्मात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः । १६
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/४

इस अविद्या के आश्रय शरीर में केवल ब्रह्म ही परिपूर्ण हैं। वे बुद्धि (साक्षी रूप में) के अहं पद वाच्य दृष्टा बन कर शरीर में स्थित है। यहां ब्रह्म शब्द द्वारा स्वतः परिपूर्ण परमात्मा का वर्णन क़िया गया है। १४,१५,१६

अस्मीत्यैक्यपरामर्शस्तेन ब्रह्म भवाम्यहम्॥ १७
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/४

एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम्॥ १८
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/५

'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस विचार द्वारा अपने को ब्रह्म के स्वरूप में चिंतन करें। वह ब्रह्म एक एवं अद्वितीय है। सत्स्वरुप एवं नाम रूप आदि से वर्जित है। १७,१८

सृष्टेःपुराधुनाप्यस्य तादृक्त्वं तदितीर्यते ॥ १९
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/५

श्रोतुर्देहेन्द्रियातीतं वस्त्वत्र त्वंपदेरितम्॥ २०
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/६

सृष्टि के पूर्व (प्रलयकाल में) एवं इस समय (सृष्टि काल में) त्वं एवं तत् (तत्वमसि) इस वेदांत वाक्य द्वारा एकमात्र ब्रह्म ही लक्षित होते हैं। श्रोता का (शिष्य का) शरीर एवं इंद्रियों से अतीत वस्तु निर्विशेष ब्रह्म तत्व त्वं पद द्वारा उक्त है। १९,२०

एकता ग्राह्यतेऽसीति तदैक्यमनुभूयताम् ॥ २१
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/६

स्वप्रकाशापरोक्षत्वमयमित्युक्तितो मत्तम्॥ २२
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/७

त्वं पद का लक्ष्य है कि तुम दृश्य ग्राह्य वस्तु में ब्रह्म रूप के ऐक्य की भावना करो। अर्थात् त्वं पद का लक्ष्य जीव से अभिन्न तत्पदवाच्य ब्रह्म मैं ही हूं ऐसा चिंतन करो। 'अयमात्मा ब्रह्म इति' इस श्रुति का अर्थ श्रुति ही विस्तृत रूप से दिखलाती है :– वे ब्रह्म स्व प्रकाशित अर्थात् साधना आदि अपेक्षाओं से वर्जित, अपरोक्ष अर्थात अप्रत्यक्ष ज्ञान स्वरुप हैं। २१–२२

अहंकारादिदेहान्तं प्रत्यगात्मेति गीयते॥ २३
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/७

जो अविद्या के द्वारा अहंकार से देह पर्यंत आश्रय किए हुए हैं उन्हें परमात्मा या जीवात्मा कहते हैं (प्रतीतोम्याने तच्चतिति) २३

दृश्यमानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्वमीर्यते ॥ २४
ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ॥ २५
– शुकरहस्योपनिषत्, ३/८

एकमात्र ब्रह्म ही अपनी अविद्या द्वारा रचित समस्त दृश्यमान ज़गत में तत्वस्वरूप में परिलक्षित हैं। २४–२५

मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः ॥ २६
अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥ २७
– अध्यात्मोपनिषत्, ३२

परमात्मा एवं जीवात्मा के माया एवं अविद्या इस उपाधि के त्याग करने पर त्वं द्वारा अखण्ड सच्चिदानंद स्वरुप एकमात्र ब्रह्म ही परिलक्षित होते हैं। २६–२७

सकारः खेचरी प्रोक्तस्त्वंपदं चेति निश्चितम् ॥ २८
– योगचूडामण्युपनिषत्, ८२
हकारः परमेशः सैउत्पदं चेतिनिश्चितमं ॥ २९
सकारो ध्याते जंतुर्हकारो हि भवेदध्रवुम् ॥ ३०
– योगचूड़ामण्युपनिषत ॥ ३

सोऽहं शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है– सकार शब्द द्वारा खेचरी बीज उक्त हुआ है अर्थात् 'खंग ब्रह्म' इस श्रुतिद्वारा आकाश की तरह सर्वव्यापक ईश्वर के बारे में बताया गया है। अतएवः सशब्द द्वारा सर्वव्यापक त्वं पद लक्ष्यार्थ जीव उक्त हुआ है। हकार द्वारा परमेश उक्त हुए हैं एवं हकार शब्द द्वारा तत्पद लक्ष्यार्थ ब्रह्म ही उक्त हुए हैं, इसे निश्चित जानें। सकार शब्द का प्रतिपाद्य जीव जब अपने निजत्व का परित्याग करता है तब हकार लक्ष्य परमात्म स्वरूप ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है॥ २९,३०

आद्यो रा तत्पदार्थः सैम्कारस्त्वं पदार्थबान् ॥ ३१
तयोः संयोजनमसीतीर्थे तत्वविद्या विदुः ॥ ३२
– रामरहस्योपनिषत्, ५/१२/१३

आद्य 'रा' शब्द तत् पदार्थ का लक्ष्यार्थ एवं मकार त्वं पदार्थ का लक्ष्यार्थ है। हे जीव! तुम रा एवं मकार का संयोजन अर्थात् अभिन्न हुए हो, अर्थात कम शब्द द्वारा जीव चैतन्य से अभिन्न परमात्मा के बारे में बताया गया है। इस प्रकार का अर्थ ब्रह्मवेत्ताओं ने किया है। ३१, ३२

नमस्तवमर्थो विज्ञेयो रामस्तंपदमुच्यते ॥ ३३
असीत्यर्थे चतुर्थी सैदेवं मंत्रेषु योजयेत् ॥ ३४
– रामरहस्योपनिषत्, ५/१३–१४

'नमः' शब्द से त्वं पद लक्ष्य ब्रह्म लक्षित हुए हैं एवं राम शब्द से तत् पद लक्षित हुआ है। असि इस अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग होता है। इस प्रकार सभी मंत्रों को ब्रह्मानुसंधान तुल्य समझें; क्योंकि ब्रह्म शब्द प्रतिपाद्य

है। ३३,३४

क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जले॥ ३५
संयुक्तमेकतां याति तथाऽऽमन्यात्मविन्मुनिः॥ ३६
– आत्मोपनिषत्, २३, २४

जिस प्रकार दूध--दूध में, तेल–तेल में एवं जल जल में मिलने पर एकत्व की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार आत्मवित् ब्रह्मवेत्ता मुनि ब्रह्म ही हो जाते हैं (ब्रह्मवित् ब्रह्म भवतिति श्रुतिः)। ३५, ३६

घटे नष्टे यथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम॥ ३७
तथैवोपाधिविलये ब्रहैव ब्रह्मवित्स्वयम्॥ ३८
– आत्मोपनिषत्, २२, २३

जिस प्रकार घट के नष्ट हो जाने पर घट स्थित आकाश निज स्वरुप महाकाश में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार अविद्या (स्थूल सूक्ष्म कारण रूप) उपाधि वर्जित होकर जीव (ब्रह्म वेत्ता) ब्रह्म स्वरुप हो जाता है। ३७,३८

॥ इति षष्ठम प्रकरणं समाप्तं॥

सार्धान्तिकमननवाक्यानि।। ७

महावाक्यार्थ बोध द्वारा जीव और ब्रह्म के ऐक्य के ज्ञान के पश्चात जीवन मुक्ति के उपाय स्वरूप मनन वाक्यों को उद्धृत किया गया है।

अहमन्नमहमन्नमन्नम् ।। १
– तैत्तिरीयोपनिषत् ३/१०/६

ब्रह्म कहते हैं कि मैं ही अन्न हूँ अर्थात् सर्वात्मक होने के कारण मैं ही अन्न रूप में विराज करता हूँ। १

अहमन्नादोऽ३हमन्नादो३हमन्नादः ।। २
– तैत्तिरीयोपनिषत् ३/१०/६

मैं ही अन्न का भक्षक हूं क्योंकि इस चराचर जगत में वही अत्ता ब्रह्म अन्न रूप में उक्त है। इस चराचर जगत को भक्षण या आत्मसात करने की शक्ति ब्रह्म के अलावा अन्य किसी में नहीं है।। २

अहंमनुरभवं सूर्याश्च ।। ३
– बृहदारण्यकोपनिषत्, १/४/१०
अहमेवेदम् सर्वमसानि ।। ४
– छान्दोग्योपनिषत् ५/२/६

मैं ही मनु, मैं ही सूर्य, चंद्र, तारे इत्यादि समस्त भूत भौतिक पदार्थों के रूप में प्रकट होता हूँ।। ३,४

यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः ।। ५
समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते ।। ६
– जाबालदर्शनोपनिषत् १०/६/७

जिस प्रकार समुद्र का फेन और तरंग आदि उठकर फिर से समुद्र में ही लय को प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार समस्त पदार्थ मुझसे ही उत्पन्न होकर मेरे अंदर ही लय प्राप्त होते हैं।। ५,६

अनात्मदृष्टेरविवेकनिद्रामहं
ममस्वप्नगतिं गतोऽहम्।। ७
स्वरूपसूर्येऽभ्युदिते

स्फुटोक्तेर्गुरोर्महावाक्यपदैः प्रबुद्धः।। ८
– शुकरहस्योपनिषत् ३/९

अविवेकी पुरुषों के शरीरादि में आत्माभिमानयुक्त होने से अविवेक के वश निद्रा आदि का प्रादुर्भाव होता है एवं देह– पुत्र– दारा आदि में मैं एवं मेरा इस प्रकार स्वप्नतुल्य ज्ञान अविवेक के कारण ही उत्पन्न होता है। लेकिन "तत्वमसि, अहंब्रह्मास्मि" (हे जीव तुम्हीं ब्रह्म हो, मैं भी ब्रह्म स्वरूप हूँ) इत्यादि महावाक्यों के गुरुमुख से निकले सुस्पष्ट उपदेश द्वारा निज स्वरुप सूर्य का उदय हुआ है अर्थात् 'मैं ही ब्रह्म स्वरुप हूँ' इस प्रकार का ज्ञानोदय हुआ है।। ७,८

प्राणाश्चलन्तु तद्धर्मै कामैर्वा हन्यतां मनः ।। ९
आनन्दबुद्धिपूर्णस्य मम दुःखं कथं भवेत् ।। १०
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, २०

प्राण आदि अपना कार्य करें अथवा प्राणादि के लिए कामादि मेरे मन को आहत करे, आनंद बुद्धिपूर्ण स्वरुप मुझे दुःख कैसे होगा।। ९,१०

न मे बन्धो न मे मुक्तिर्ण मे शास्त्रं न मे गुरुः ।। ११
मायामात्रविकासत्वान्मयातीतोहहमद्वयः ।। १२
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, १९

मैं अद्वैत ब्रह्म ज्ञानी हूँ, इसलिए मेरा बन्धन नहीं है, मुक्ति नहीं है, शास्त्रों की आवश्यकता नहीं है, कोई मेरा गुरू भी नहीं है। यह समस्त माया का विलासमात्र है। मैं मायातीत अद्वय ब्रह्म स्वरूप हूँ।। ११, १२

आत्मानमञ्जसा वेद्मि क्वाप्यज्ञानं पलायिच ।। १३
कर्तृत्वमद्य मे नष्टं कर्तव्यं वापि न क्वचित् ।। १४
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, २१

मैंने यहां ब्रह्म का साक्षात दर्शन किया है। मेरा अज्ञान कहीं पलायन कर गया है। मेरे शरीर आदि में कर्तृत्व आदि अभिमान का नाश हो चुका है।

अब मेरा कोई कर्तव्य नहीं है।। १३,१४

ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नामसौन्दर्यजातयः।। १५
स्थूलदेहगता एते स्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि।। १६
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, २२

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण, मनुष्य आदि जाति, कुल, गोत्र, नाम एवं सौंदर्य– कदर्य आदि धर्म समस्त स्थूलदेह मात्र के धर्म हैं। इस स्थूलदेह से भिन्न मेरा (आत्मा का) यह सब धर्म नहीं है।। १५,१६

क्षुत्पिपासान्ध्यबाधिर्यकामक्रोधादयोऽखिलाः ।।१७
लिङ्गदेहगता एते ह्यलिङ्गस्य न सन्ति हि।। १८
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, २३

क्षुत्, पिपासा, अंधता, बधिरता, काम, क्रोध आदि समस्त धर्म लिंग (सूक्ष्म) देह के लिए हैं। इस लिंग देह से पृथक ये समस्त धर्म मेरे (आत्मा के) नहीं हैं।। १७–१८

जड़त्वप्रियमोदत्वधर्माः कारणदेहगाः ।। १९
न सन्तिमम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः।। २०
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, २४

जड़त्व प्रिय एवं आनंद आदि समस्त धर्म कारण देह के लिए हैं। ये धर्म नित्य विकाररहित मेरे (आत्मा के) नहीं है।। १९,२०

चिद्रूपत्वान्न मे जाडयं सत्यत्वान्नानृतं मम ।। २१
आनन्दत्वान्न मे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत् ।। २२
– आत्मप्रबोधोपनिषत्, ३०

आत्मा चित्त स्वरूप है, इसलिए इसमें जड़ता नहीं है, सत्स्वरूप है इसलिए इसमें मिथ्या नहीं है, एवं आनंदस्वरूप है इसलिए जो दुःख अज्ञानवश सत्य की तरह प्रतीयमान होते हैं वे इसमें नहीं हैं।। २१, २२

नाहं देहो जन्ममृत्यु कुतो जे
नाहं प्राणः क्षुतपिपासे कुतो मे।। २३
नाहं चेतः शोकमोहौ कुतो मे

नाहं कर्त्ता बन्धमोक्षो कुतो मे।। २४
–सर्वसारोपनिषत्,१२

जब मैं देह ही नहीं हूँ, तो मेरा जन्म या मृत्यु कैसे हो सकते हैं? जब मैं प्राण ही नहीं तो मुझे भूख या प्यास का अनुभव कैसे हो सकता है? जब मैं चित्त ही नहीं तो मुझे शोक या मोह कहां? जब मैं कर्त्ता ही नहीं तो मुझे बंधन या मोक्ष किस कारण से हो सकते हैं? २३–२४

आनन्दमन्तर्निजमाश्रयं
तमाशापिशाचीमवमानयन्तम् ।। २५
आलोकयन्तं जगदिन्द्रजाल
मापत्कथंमां प्रविशेदसङ्गम्।। २६
– मैत्रेय्युपनिषत्, १/१२

मैं एकमात्र अपने आनन्दस्वरूप का ही आश्रयकारी हूँ, यह मेरा हो, यह मेरा हो, ऐसी आशा पिशाची का अपमानकरने वाला, जगत् को इन्द्रजाल के समान मिथ्या दर्शन करने वाला एवं आसक्ति रहित हूँ अतएव विपत्ति मुझ पर आक्रमण करने में (स्पर्श) कैसे समर्थ हो सकती है?२५–२६

देवार्चनस्नानशौचत्रिक्षादौ वर्तता वपुः ।। २७
तारं जपतु वाक्तद्वत्पठत्वाम्नायमस्तुकम्।। २८
–अवधूतोपनिषत्, २४

मेरी देह पूर्व संस्कार वश देवार्चना, स्नान, शौचक्रिया एवं भिक्षा में प्रवृत्त हो। मेरी वागीन्द्रिय उच्च स्वर में प्रणव आदि का जप करे या वेद पाठ करे।। २७–२८

विष्णु ध्यायतु धीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम् ।। २९
साक्ष्यहं किंचिदप्यत्र न कुर्वे नापि कारये।। ३०
–अवधूतोपनिषत्, २५

मेरी बुद्धि सर्वव्यापक विष्णु का ध्यान करे अथवा ब्रह्मानन्द सागर में विलीन हो जाए। मैं (आत्मा) साक्षी मात्र हूँ, मैं कोई कार्य नहीं करता एवं किसी को किसी कार्य में प्रवर्तित भी नहीं करता।।२९–३०

ज्ञातं ज्ञामव्यामधुना दृष्टं द्रष्टव्यामद्भुतम्।।३१

आत्मा स्वरूप ज्ञातव्य जो निर्विशेष ब्रह्म है वही मत्कतृक ज्ञात है एवं अपरोक्ष (साक्षात्) 'अहं ब्रह्मास्मि– मैं ही वह ब्रह्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार द्रष्टव्य (वही निर्विशेष ब्रह्मभाव) मत्कतृक में दृष्ट है।। ३१

विश्रान्तोऽस्मि चिरंश्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्ति किन्चन।।३२
न भूतं न भविष्यच्च चिन्तयामि कदाचन ।। ३३
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/५७

निज अज्ञ दशा में मैं स्वातिरिक्त प्रपञ्च में मग्न था, 'अब केवल चित्स्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) हूँ' ऐसा ज्ञान प्राप्त कर विश्राम लाभ कर रहा हूँ। अब मुझे ब्रह्म से भिन्न भूत, भविष्यत और वर्तमान विषयों की चिंता का कोई प्रयोजन नहीं है।। ३२–३३

न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनोऽन्यन्नहि क्वचित् ।। ३४
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/५९

मैं किसी का स्तवन या निन्दा नहीं करता, क्यों कि मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, (सर्वमात्मयं जगत् इति श्रुतेः) एवं यह समस्त जगत ही ब्रह्ममय है एसा श्रुति में कहा गया है।। ३४

अलेपकोऽहमजरो नीरागः शान्तवासनः ।। ३५
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/९२

मैं जगत के प्रपञ्च में लिप्त नहीं हूँ (संश्रवशून्य), मैं स्थूल देह से पृथक होने के कारण अनुराग रहित एवं सर्वपासना –वर्जित अतः ब्रह्मस्वरूप हूँ।।३५

स्वपूर्णात्मातिरेकेण जगज्जीवेश्वरादयः ।। ३६
न सन्ति नास्ति माया च तेभ्यश्चाहं विलक्षणः ।। ३७
– वराहोपनिषत्, २/११/१२

मेरे अपने पूर्णस्वरूप के अतिरिक्त जगत, जीव एवं ईश्वर आदि नहीं है, माया भी नहीं है। यह मैं सबसे विलक्षण ब्रह्मस्वरूप (सर्वस्मात् अन्यो विलक्षण इति श्रुतः) हूँ।। ३६–३७

किं करोमि क्व गच्छामि
किं गृह्णामि त्यजामि किम् ।। ३८
यन्मया पूरितं विश्वं

महाकल्पाम्बुना यथा।। ३९
– वराहोपनिषत्, २/३५/३६

जिस प्रकार महाप्रलय के समय पृथ्वी जल से पूरित होती है, उसी प्रकार मेरे द्वारा (ब्रह्मरूप में) यह विश्व प्रपञ्च प्रपूरित हुआ है, अतएव मैं ब्रह्मस्वरूप होने के कारण कर्त्तव्य कार्य के अभाव वश कौन सा कार्य करूँगा?

अर्थात् मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। सर्वव्यापक होने के कारण गन्तव्य प्रदेश के अभाव वश मैं कहां जाऊंगा? मदतिरिक्त विषयों के अभाव वश मैं कौन सा विषय ग्रहण करूँगा? सबकुछ ब्रह्ममय होने के कारण मैं किस वस्तु का परित्याग करूँगा? (नास्ति अनात्मेति निश्चिनु इति श्रुतः।। ३८–३९)

इति सप्तमम् प्रकरणं समाप्तम्।।

सार्धान्तिकजीवन्मुक्ति वाक्यानि।। ८

महावाक्यार्थ ज्ञान द्वारा मनन संपन्न होकर मनन के फ्लस्वरुप समस्त जीवनमुक्ति वाक्यों को उद्धृत किया गया है।

स तत्र पर्यैति जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा
यानैर्षा ज्ञातिभिर्वा नोपजनं
स्मरन्निदं शरीरं ।। १
– छान्दोग्योपनिषत् ८/१२/३

महाकाव्य श्रवण एवं मनन द्वारा ब्रह्म भाव को प्राप्त होकर ब्रह्मवित् पुरुष यद् इच्छा प्राप्त आहार्य का भक्षण कर चित्त के विकारों से रहित होकर स्त्री, यान, आत्मीय या वयस्यगण के साथ क्रीड़ा एवं रमणशील होकर ''यह शरीर उत्पत्ति का अधिकरण नहीं है'' इस प्रकार स्मरण कर निज ब्रह्म भाव में स्थित होकर काल यापन करते हैं।

स वा एष एवं पनान्नेवं मन्वान
एवं विजानान्नात्मरतिरात्मक्रीड़ आत्म–
मिथुन आत्मानन्दः स स्वारड् भवति।। २
– छान्दग्योपनिषत्, ७/२०/२

वे ब्रह्मविद्वरिष्ठ अपने ब्रह्मभाव दर्शन, मनन एवं साक्षात कर आत्मरति, आत्मक्रीड़ा, आत्ममिथुन एवं आत्मानन्द स्वरूप होकर स्वराट होते हैं अर्थात् अपने ब्रह्म स्वरूप में निराजमान रहते हैं।। २

ते देवाः पुत्रैषणायाश्च वितैषणायाश्च
लोकैषणायाश्च ससाधनेभ्यो व्युत्थाय निरागारा
निष्परिग्रहा अशिखा अयज्ञोपवीता अन्धा बधिरा
मुग्धाः क्लीबा मूका उन्मत्ता इव परिवर्तमानाः
शान्ता दान्ता उपरतास्तितिक्षवः समाहिता

आत्मरतयः आत्मक्रीड़ा आत्ममिथुना आत्मानन्दाः
प्रणवमेव परमं ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यं जानन्त
स्तत्रैव परिसमाप्ताः ।। ३
– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, छठा खण्ड

पुत्रैषणा (पुत्र की कामना), वित्तेषणा (धन की कामना), लोकेषणा (लोक प्रतिष्ठा की कामना) एवं उक्त त्रय कामनाओं की समस्त साधनाओं का सम्यक त्याग कर निरागार (वास योग्य गृह से रहित), निष्परिग्रह (अपने प्राण धारणोपयोगी द्रव्य ग्रहण व उसके अतिरिक्त अन्य द्रव्यों का ग्रहण न करना) एवं शिखा व यज्ञोपवित से रहित होकर, अंध (ब्रह्म के अतिरिक्त रूप का ग्रहण न करना), बधिर (ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य शब्द ग्रहण न करना), मूक (ब्रह्म के भाव में मुग्ध व अन्य वस्तुओं की मुग्धता एवं सौन्दर्य से वर्जित), क्लीव (स्त्री आदि भोग वस्तुओं से विकार रहित) एवं उन्मत्त (लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठ चित्त रहना) के समान निग्रिहित अंतर इंद्रिय से शांत एवं वाह्येन्द्रिय से संयत दांतस्वरूप, अन्तर्वाह्य विषयों में उपरत, शीतोष्ण–द्वंद्व सहिष्णु, लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित्त, आत्मरतिशील, आत्मक्रीड़ाशील, आत्ममिथुन एवं आत्मानन्दयुक्त व परब्रह्म एकमात्र प्रकाश प्रणव होकर ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त शून्य है। इस प्रकार का ज्ञान लाभ कर वे सभी ब्रह्मवेत्ता निर्विशेष ब्रह्म में ही परिसमाप्त होते हैं (स्वयं ब्रह्म हो जाते हैं)।। ३

कुचेलोऽसहाय एकाकी समाधिस्थ आत्मकाम
आप्तकामो निष्कामो जीर्णकामो हस्तिनि सिंहे
दंशे मशके नकुले सर्पराक्षसगन्धर्वे
मृत्यो रूपाणि विदित्वा न बिभेति कुतश्चनेति।। ४
– एुबालोपनिषत्, १३

ब्रह्मवेत्ता परिब्राट जीर्ण कौपीन एवं कन्था धारण करते हैं इसलिए वे कुचेल– पदवाच्य, स्वदेह के अतिरिक्त सहाय ग्रहण न करने के कारण वे असहाय एवं एकाकी, विक्षेप रहित होने के कारण समाधिस्थ, अपने ब्रह्मस्वरूप आत्मा की ही कामना करने के कारण आत्मकाम, किसी विषय का अभाव बोध न करने के कारण आप्तकाम, ''ये मेरा हो'', ''ये मेरा हो'' इत्यादि कामनाओं से रहित होने के कारण निष्काम, ज्ञानरूपी जठराग्नि में

उनकी कामनाओं के जीर्ण हो जाने से जीर्णकाम होते हैं। हस्ती, सिंह, दंश मशक, नकुल, सर्प, राक्षस, गन्धर्व आदि से उनकी मरणधर्मशीलता के बारे में जान लेने के कारण उनमें भय या द्वैतज्ञान का अभाव होने से अद्वैतदृष्टि द्वारा उन्हें किसी से भय नहीं होता।। ४

सर्वधर्मान्परित्यज्य निर्ममो निरहंकारो
भूत्वा ब्रह्मेष्टं शरणमुपगम्य तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि सर्वं
खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेत्यादिमहावाक्यार्थानुभव
ज्ञानाद ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्प
समाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स संन्यासी स मुक्तः
स पूज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः
स ब्राह्मण इति।।

— निरालम्बोपनिषत्

जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पित
चतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य षड्विशः
परमात्माहमिति निश्चयाज्जीवन्मुक्तो भवति।। ५

— मण्डलब्राह्मणोपनिषत् १/४

परिव्राट ब्रह्मवित् मुनि श्रुतिस्मृतिविहित एवं प्रतिसिद्ध विधिनिषेधरूप समस्त धर्मो का परित्याग कर समस्त विषयों के प्रति ममता शून्य, निरहंकार एवं ब्रह्मनिष्ठ अपने आचार्य के शरणागत होकर "तत्वमसि" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादि महा वाक्यार्थ के अनुभव से ज्ञान लाभ कर मैं ही ब्रह्म हूं इस प्रकार निश्चय कर निर्विकल्प समाधि द्वारा अपराधीन यति, संन्यासी, पूजा, योगी एवं परमहंसपदवाच्य होकंर विचरण करते हैं। वे अवधूत ब्राह्मण, वे पंचविंशतत्वयुक्त जीव पद वाच्य होकर अपने कल्पित चतुर्विंशति तत्व का त्याग कर 'षडविंशतत्व परमात्मा मैं ही हूँ' इस प्रकार निश्चय ज्ञान द्वारा जीवनमुक्त पद वाच्य होते हैं।। ५

तुरियमक्षरमिति ज्ञात्वा जागरिते सुषुप्तावस्थापन्न
इव यदृच्छुतं यद्यदृष्टं तत् सर्वमविज्ञातमिव
यो वसेतस्य स्वप्नावस्थायमपि तादृग्वस्था भवति
स जीवन्मुक्तो भवति।। ६

तुरीय (चतुर्थ) स्थानीय अक्षर (क्षय रहित) परमात्मा को जान कर जाग्रतकाल में सुषुप्ति की तरह जो श्रुत या दृष्ट होता है उससे मानो अविज्ञात हो इस प्रकार, एवं स्वप्नावस्था में भी जो इसी प्रकार के भावयुक्त रहते हैं, वे जीवन्मुक्तपदवाच्य हैं।। ६

सकृद्विभातसदानन्दानुभवैकगोचरो ब्रह्मविद्
विद्वांशचक्षुरादिवाह्यप्रपञ्चोपरतः सर्वं जगदा–
त्वेन पश्यन्नात्मेति भावयन् कृतकृत्यो भवति ।। ७

स्वयं प्रकाश, आनन्दमय, एकमात्र परमब्रह्म ही अविद्यावरणशून्य ज्ञानी व्यक्ति के सदा अनुभव का विषय है। वह ब्रह्मवेत्ता विद्वान चक्षु आदि इंद्रिय से ग्रहण वाह्य वस्तु प्रपञ्च से विरत होकर पूरे जगत को ब्रह्ममय दर्शन एवं भावना कर कृतकृत्य होते हैं।। ७

निर्द्वंद्वः सादहचंचलगात्रः परमशान्तिं
स्वीकृत्य नित्यशुद्धः परमात्माहमेवेतखण्डा–
नन्दः पूर्णः कृतार्थः परिपूर्णपरमाकाश–
मग्नमनाः प्राप्तोन्मन्यावस्थः संन्यास्त
सर्वेन्द्रियवर्गोहनेकजन्मार्जित पुन्यपुञ्ज
परिपक्कैवल्य फलोहखण्डानन्दनिरस्तसर्व–
क्लेशकश्मलो ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति ।। ८

— महावाक्यरत्नावली, ८

वे ब्रह्मवित् पुरुष शीतोष्ण–सुखदुःख के अभाव से द्वंद्वरहित, सदा विर्विकल्प समाधियुक्त होने के कारण अचंचलगात्र, समस्त जगत ब्रह्ममय है इस भावना द्वारा शांत स्वरुप, नित्यशुद्ध परमात्मा मैं ही हूँ इस प्रकार अनुभव द्वारा अखण्ड आनन्द स्वरूप, अपूर्णप्रपञ्चों में वे ही पूर्णस्वरूप, अपने कर्त्तव्य के अभाव वश कृतार्थ, परिपूर्ण परमाकाश स्वरूप ब्रह्म में जिनका मन सदा मग्न हो, वे निर्विकल्प समाधि में प्राप्त उन्मत्तावस्था को प्राप्त समस्त इंद्रिय व्यापार से त्यक्त एवं अन्य जन्मों के अर्जित पुण्यराशि से परिपक्व मोक्ष रूप फल को प्राप्त सदा एकरस एवं आनन्द युक्त एवं समस्त क्लेश रूप दुर्बलताओं से निरस्त होते हैं। इस प्रकार के ब्रह्मवित् "मैं ही ब्रह्म हूँ" इस भावना से कृतकृत्य रहते हैं।। ८

ब्रह्मैवाहस्मीत्यनवरतं ब्रह्मप्रणवानुसन्धानेन
यः कृतकृत्यो भवति स ह परमहंसपरिब्राट।। ९
– परमहंसपरिब्राजकोपनिषत्,

'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस रूप में नियत ब्रह्म के प्रतीकस्वरूप प्रणव (ओंकार) के जप एवं अर्थ के चिंतन द्वारा वे परमहंस परिब्राजक मुनि जीवन्मुक्त पदवाच्य हो जाते हैं।। ९

भावाभावकलाविनिर्मुक्तः सर्वसंशयध्वस्तः
पूर्णाहंभावं कृतकृत्य भवति ।। १०

निर्विशेष ब्रह्मज्ञानी योगी भाव व अभाव कला (शब्द आदि विषय रूप भावकला एवं अन्तःकरणवृत्ति रहित रूप अभाव कला) से विमुक्त होकर मैं ही ब्रह्म स्वरूप हूँ इस ज्ञान से सभी संशयों से रहित एवं मैं ही पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हूँ, इस प्रकार के ब्रह्म भाव से युक्त होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं।। १०

प्राणो हैष सर्वभूतैविभाति विजानन्
विद्वान् भवते नातिवादी ।। ११
–मुण्डकोपनिषत्, ३/१/४

(प्राणस्य प्राण इति श्रुतेः) वही ब्रह्म प्राणों का प्राण है, अतएव वे ही आत्मरूप में आब्रह्मस्तंवादि सभी भूतों में विराजमान हैं, इस प्रकार जानकर ब्रह्मवित् पुरुष तुष्णीम्भाव अर्थात् मौन का अवलंबन करते हैं।। ११

आत्मक्रीड़ आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।। १२
– मुण्डकोपनिषत् ३/१/४

परमात्मा में क्रीड़ाशील, परमात्मा में रमणशील एवं परमात्मा के ध्यान में ही क्रियाशील पुरुष ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ है।। १२

निमिषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं बिना ।। १३
यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्यः सनकाद्याः शुकादयः ।। १४
– तेजबिन्दूपनिषत् ९/४७

जिस प्रकार ब्रह्मादि, सनकादि एवं शुकादि जीवन्मुक्त ब्रह्म मय वृत्ति से युक्त होकर अवस्थान करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्तागण ब्रह्ममय वृत्ति के, अतिरिक्त अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ इस भावना के अतिरिक्त अर्द्धनिमिष काल भी अवस्थान

नहीं करते।। १३,१४

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निराशीषः ।। १५
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्।। ३/४४
सर्वद्वन्द्वैर्विनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते।। १६
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ३/५२

जो ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में रमणशील, सदा ब्रह्मभाव में स्थित, ब्रह्म से भिन्न अन्य अपेक्षाओं से वर्जित एवं कामना रहित तथा शीतोष्ण, सुख–दुःख आदि द्वंद्वों से मुक्त होते हैं वे सर्वदा ब्रह्म में ही निवास करते हैं।। १५,१६

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलान्यसहायता।। १७
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्।। १८
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ३/५४

जो भिक्षापात्र, वृक्षमूल, जीर्णकंथा एवं असहायता जैसे समस्त विषयों में समभावयुक्त होते हैं उन्हें मुक्त कहते हैं।। १७,१८

स्वप्नेऽपि यो हि युक्तः स्याज्जाग्रतीव विशेषतः ।। १९
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ।। २०
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ५/५

जो स्वप्न में विशेषतः जाग्रत अवस्था में ब्रह्म में समाहित होते हैं, वे ही ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ एवं वरणीय होते हैं।। १९,२०

निर्मानश्चानहंकारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः ।।२१
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ५/१७
आत्मक्रीड आत्मरतिरात्मवान्समदर्शनः ।। २२
– नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ५/२५
स्मृत्वा स्पृष्टा च भुक्तवा च दृष्टवज्ञात्वा शुभाशुभम् ।। २३
न हृष्यति ग्लायति यः स शांत इति कथ्यते।। २४
– महावाक्यरत्नावली, ८

जो मान एवं अहंकारवर्जित, द्वंद्वशून्य, निःसंशय, आत्मा में ही क्रीड़ाशील, आत्मा में ही रमणशील, ब्रह्मभाव में स्थित, सर्वत्र समदर्शी एवं शुभाशुभ विषयों के स्मरण, स्पर्श, भोजन, दर्शन व ज्ञान लाभ करने के बाद भी

हर्ष एवं ग्लानि से युक्त नहीं होते, वे ही शांतपुरुष हैं।। २१,२२,२३,२४

अप्राप्तं हि परित्यज्य संप्राप्ते समतां गतः ।। २५
– महोपनिषत् ४/३६

जो ब्रह्मवेत्ता अप्राप्त वस्तु की इच्छा का परित्याग कर प्रारब्ध के वश प्राप्त वस्तु से ही संतुष्ट होते हैं, वे समता प्राप्त होते हैं।। २५

अदृष्टखेदाखेदो यः संतुष्ट इति कथ्यते ।। २६
– महोपनिषत् ४/३६

अपने इष्ट की अप्राप्ति में अखेद एवं उसकी प्राप्ति से खेद, इस प्रकार अदृष्टलब्ध विषयों में जो सुख–दुःख वर्जित रहते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त संतुष्ट कहते हैं।। २६

नाकृतेन कृतेनार्थो न श्रुतिस्मृतिविभ्रमैः ।। २७
निर्मन्दर इचाम्बोधिः स तिष्ठति यथास्थितः ।। २८
– महोपनिषत् ४/४१

श्रौत एवं स्मार्त नानाविध प्रतिसिद्ध एवं विहित कर्मों में जिनका कोई पुरुषार्थ नहीं होता वे ही जीवन्मुक्त पुरुष हैं। समुद्र जिस प्रकार मंथन रहित होने से स्थिर भाव धारण करता है उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष ब्रह्मनिष्ठ होकर स्थिर भाव धारण करते हैं।। २७,२८

सम्यग्ज्ञानावरोधेन नित्यमेकसमाधिना ।। २९
सांख्य एवावबुद्धा ये ते सांख्या योगिनः परे।। ३०
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/४९

ब्रह्मवित् सम्यक प्रकार का ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर एवं नित्य ब्रह्म में समाधिस्थ होकर जीवन्मुक्त कहलाते हैं। शास्त्रों में जो प्रतियोगिता रहित परमब्रह्म प्रतिपादित हुआ है, उसी अद्वैत शास्त्र को सांख्य कहते हैं। उस अद्वैत ब्रह्म को जिन लोगों ने जान लिया है, उन्हें सांख्य योगी कहते हैं।। २९,३०

प्राणाद्यनिलसंशान्तौ युक्तया ये पदमागताः ।। ३१
अनामयमनाद्यन्तं ते स्मृता योगयोगिनः ।। ३२
–अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/५०

संप्रज्ञात समाधि द्वारा प्राणवायु के निरुद्ध होने पर निरामय (व्याधि

रहित) अनादि स्वरूप ब्रह्म में स्थिर चित्त व्यक्ति योगयोगी के रूप में
(जीवन्मुक्त) अभिहित होते हैं।। ३१, ३२ सुखदुःखदशा
धीरं साम्यान्न प्रोद्धरन्ति यम्।। ३३
निःश्वासा इव शैलेन्द्रं चित्तं तस्य मृतं विदुः ।। ३४
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ४/१२

जिस प्रकार मुंह से निकली हुई सांस शैलेन्द्र को (मेरुपर्वत को) विचलित करने में समर्थ नहीं होती उसी प्रकार शीतोष्ण एवं सुख–दुःख जिस ब्रह्मवित् धीर पुरुष को साम्य रहने से विचलित करने में समर्थ नहीं हो सकते एवं जो चित्तचांचल्य से रहित होकर मृतवत् प्रतीयमान होते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ३३,३४

वाचामतीतविषयो विषयाशादशोज्झितः ।। ३५
परानन्दसाक्षुब्धो रमते स्वात्मनत्मनि ।। ३६
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/९६

वाक्य से अतीत ब्रह्म ही एकमात्र विषय है। जिन्होंने उससे अलग समस्त विषयों की आशा का परित्याग किया है, परमानंद रस से तृप्त वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपनी आत्मा द्वारा परमात्मा में रमण करते हैं।। ३५,३६

निर्ग्रन्थिः शान्तसंदेहो जीवन्मुक्तो विभावनः ।। ३७
अनिर्वाणोऽपि निर्वाणश्चित्रदीप इव स्थितः ।। ३८
– अक्षुपनिषत्, ४०

निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महाबलः ।। ३९
नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ।। ४०
कुर्वन्नपि न कुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि ।। ४१
शरीर्यप्यशरीर्येष परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ।। ४२
– आत्मोपनिषत्, १२, १४

अविद्यारूपी ग्रंथीरहित, ब्रह्मज्ञान से संशय छिन्न एवं अपने अतिरिक्त भावनाओं से रहित पुरुष को ही जीवन्मुक्त कहते हैं। वे अज्ञानदृष्टि से अमुक्त रूप में प्रतिभात होने पर भी चित्र में स्थित दीप की भांति स्वंय मुक्त स्वरूप होते हैं; निर्धन होकर भी ब्रह्मभाव में सदा तुष्ट एवं अपने अतिरिक्त

सहायशून्य होकर भी आत्मबल से बलवान होते हैं, वे विषयभोग से रहित होकर परमात्मरस से सदा तृप्त, असम (समाता रहित) प्रपञ्चों में सदा ब्रह्म का दर्शन करने के कारण समदर्शी, कर्तृत्व के अभिमान एवं अहंकार से रहित होने के कारण श्रौत एवं स्मार्त कर्मानुष्ठान करके भी निष्कर्मा एवं आसक्ति रहित होने के कारण फलों का भोग करने पर भी अभोक्ता कहलाते हैं। वे शरीर धारण करते हुए भी अशरीरी अर्थात् शरीर जन्य सुख–दुःख रूप फलों के भोग रहित एवं देह आदि से परिच्छिन्न (सीमाबद्ध) की तरह प्रकाश पाकर भी ब्रह्मभाव के वश सर्वव्यापक होते हैं। ३७,३८,३९,४०,४१,४२

अध्यात्मरतिरासीनः पूर्णः पावनमानसः ॥ ४३
– महोपनिषत् २/४७

सदा अद्वैत अध्यात्मशास्त्र में रति युक्त, अपने ब्रह्म भाव में स्थित, सर्वत्र ब्रह्मस्वरूप में परिपूर्ण एवं मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार की भावना द्वारा विशुद्धचित्त व्यक्ति जीवन्मुक्त पद वाच्य होते हैं॥ ४३

नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः ॥ ४४
न ससाधनजाप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः॥ ४५
– मुक्तिकोपनिषत्, २/२०

जो ब्रह्मवित् पुरुष मन की वासना से शून्य हो गया है, उसके नैश्कर्म्य (कर्मसंन्यास) एवं विहित कर्म का भी प्रयोजन नहीं है। क्योंकि उन्होंने अपने मन को निर्वासन (वासनाशून्य) बना लिया है। अतएव मनोनिग्रह के लिए उनको मंत्र के जप की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इन कर्मों की आवश्यकता चित्त को विशुद्ध या वासनारहित करने के लिए ही होती है॥ ४४,४५

जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥ ४६
न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति॥ ४७
– पाशुपतब्रह्मोपनिषत्, २४/२५

ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रतिभाषिक ज्ञान–कल्पित जगत एवं जीवों का दर्शन कर के भी अपनी ज्ञान दृष्टि से जगत एवं जीव आदि रूपों का दर्शन न कर इन सभी को चिन्मय ब्रह्मवस्तु मान कर दर्शन करता है॥ ४६,४७

अहमन्नं सदान्नाद इति हि ब्रह्मवेदनम्॥ ४८

ब्रह्मविद्ग्रसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैव तु॥ ४९
– पाशुपतब्रह्मोपनिषत्, ३८, ३९

मैं ही अन्न एवं अन्न का अत्ता (ब्रह्म ही अन्न एवं अन्न का अत्ता) है। इस ब्रह्मज्ञान द्वारा ब्रह्मवित् समस्त प्रपञ्चों को ब्रह्मस्वरूप में ग्रास करता है। अतएव समस्त प्रपञ्चों के ग्रास हेतु केवल ब्रह्ममात्र अवशिष्ट रहता है॥ ४८,४९

समाधिस्थ कार्याणि मा करोतु करोतु वा॥ ५०
हृदयेनात्तसर्वेहो मुक्त एवोत्तमाशयः ॥ ५१
– मुक्तिकोपनिषत्, २/१९

ब्रह्मवित् वरणीय हृदय द्वारा समस्त इहा (चेष्टा) का ग्रास कर अर्थात् निष्चेष्ट होकर समाधियुक्त होते हैं, कोई कर्म करे या न करे वे सदा ब्राह्मी स्थिति में रहने के कारण उत्तमाशय एवं जीवन्मुक्त पदवाच्य होते हैं॥ ५०,५१

अक्षरत्वाद्वरेण्यत्वाद्धूतसंसारबन्धनात् ॥ ५२
तत्वमस्यादिलक्ष्यत्वादवधूत इतीर्यते ॥ ५३
यो विलङ्घ्याश्रमान्वर्णानात्मन्येव स्थितः सदा॥ ५४
अतिवर्णाश्रमी योगी अवधूतः स कथ्यते॥ ५५
– अवधूतोपनिषत् १/२

ब्रह्मवित् अक्षर (अविनाशी) एवं वरणीय ब्रह्मभावना द्वारा संसार बंधन से विच्युति प्राप्त कर एवं तत्वमस्यादि महावाक्य के लाभार्थ ज्ञान का लाभ कर अवधूत कहलाते हैं। वे चारों आश्रमों एवं ब्राह्मण आदि वर्णों का अतिक्रमण कर ब्रह्मभाव में स्थित होते हैं, उन वर्णाश्रम अतीत योगी पुरुषों को अवधूत कहते हैं॥ ५२,५३,५४,५५

यथा रविः सर्वरसान्प्रभुङ्क्त
हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः ॥ ५६
तथैव योगी विषयान्भुङ्क्ते
न लिप्यते पुण्यपापैश्च शुद्धः ॥ ५७
– अवधूतोपनिषत्

जिस प्रकार सूर्यदेव अच्छे बुरे समस्त रसों का शोषण करते हैं एवं जिस

प्रकार अग्नि समस्त पदार्थों का भक्षण करती है (अग्नि के संपर्क में अच्छे बुरे सभी पदार्थ भस्म हो जाते हैं), उसी प्रकार ब्रह्मवित् योगी विशुद्ध चित्त वश निर्लिप्त (ब्रह्म) भाव से समस्त विषयों का भोग करते हैं एवं निर्लेप के कारण विषय भोग जनित पाप–पुण्य द्वारा लिप्त नहीं होते।। ५६,५७

केवलं सुसमः स्वच्छो मौनी मुदितमानसः ।। ५८
– महोपनिषत् २/२७

वे ही ब्रह्म भाव में मननशील होने के कारण समभाव से युक्त होकर विशुद्ध एवं सदा आनन्दचित्त से स्थित रहते हैं।। ५८

संतोषामृतपानेन ये शान्तास्तृप्तिमागताः।। ५९
आत्मारामा महात्मानस्ते महापदमागताः।। ६०
– महोपनिषत् ४/३५

जो शांत पुरुष ब्रह्म में स्थित होकर संतोष रूपी अमृत का पान कर नित्य तृप्त हो काल यापन करते हैं, वे सभी महात्मा परमात्मा में रमणशील ब्रह्म–पदारूढ़ होते हैं।। ५९,६०

हर्षामर्षभयक्रोध कामकार्पण्यदृष्टिभिः।। ६१
न हृष्यति ग्लायति यः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ६२
– महोपनिषत् २/४३–४४

जो सुख–दुःख, भय, क्रोध, काम व दैन्य दृष्टि (भाव) द्वारा हर्ष या ग्लानि से युक्त नहीं होते, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ६१,६२

अहंकारमयीत्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः ।।६३
तिष्ठति ध्येयसंत्यागी स जीवन्मुक्त उच्यते।। ६६
– महोपनिषत् २/४५

जो अहंकारयुक्त वासना का सहज रूप से त्याग कर ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओं का वर्जन कर अवस्थान करते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ६३,६४

मौनवान्निरहंभावो निर्मानो मुक्तमत्सरः।। ६५
यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ६६
– महोपनिषत् २/५०

जो हमेशा ब्रह्मभाव में मौन, अहंकार, मान एवं मत्सरता से रहित तथा जो समस्त विषयों के उद्वेग से रहित (संकल्पशून्य निज देह धारणोपयोगी भिक्षादि कर्म करते हैं) होते हैं वे ही जीवन्मुक्त पुरुष हैं।। ६६

यावती दृश्यकलना सकलेयं विलोक्यते।। ६७
– महोपनिषत् २/५३
सा येन सुष्ठु संत्यक्ता स जीवन्मुक्त उच्यते।। ६८
– महोपनिषत् २/५३
उद्वेगानन्दरहितः समया स्वच्छया धिया।। ६९
न शोचति न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते।। ७०
– महोपनिषत् २/५७

अज्ञानवश व्यवहारिक दशा में सत्य रूप में दिखाई देनेवाले समस्त दृश्यप्रपञ्चों का जिन्होंने ज्ञानदृष्टि द्वारा त्याग किया हो, जो स्व अभिलाषित विषयज उद्वेग व आनन्द रहित एवं अपने नियमित विशुद्ध चित्त द्वारा किसी विषय में हर्ष या विषाद युक्त नहीं होते, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ६७,६८,६९,७०

सर्वेच्छाः सकलाः शङ्काः सर्वेहाः सर्वनिश्चयाः ।।७१
धिया येन परित्यक्ताः स जीवन्मुक्त उच्यते ।। ७२
– महोपनिषत् २/५८
जन्मस्थितिविनाशेषु सोदयास्तमयेषु च।। ७३
सममेव मनो यस्य स जीवन्मुक्त उच्यरो।। ७४
– महोपनिषत् २/५९
सर्वाधिष्ठानचिन्मात्रे निर्विकल्पे चिदात्मनि ।। ७५
यो जीवति गतस्नेहः स जीवन्मुक्त उच्यते ।। ७६

"यह मेरा हो" इत्यादि प्राप्तव्य वस्तु विषयक समस्त इच्छाओं को "यह इस प्रकार हो या इस प्रकार नहीं है" इत्यादि संशय के विषयों की समस्त आशंकाओं, सभी भोग इच्छाओं एवं "मैं देह हूँ, मैं शरीर हूँ" इत्यादि रूप को निश्चय ज्ञान के ब्रह्मभाव में परिणत अपनी विशुद्ध बुद्धि द्वारा जिसने त्याग किया है; जिसके उदय एवं अस्तशील जन्म स्थिति व विनाश में "समस्त ही ब्रह्म है" इस प्रकार की भावना द्वारा जिसका मन समभाव को प्राप्त हो चुका है; एवं सबका आधार चिन्मय निर्विकल्प चित्तस्वरूप ब्रह्मभाव

साक्षात कर जो ब्रह्म से भिन्न अन्यत्र विगत स्नेह होकर जीवन धारण करता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।। ७१,७२,७३,७४,७५,७६

क्रियानाशाद्भवेच्चिन्तानाशोऽस्माद्वासनाक्षयः ।। ७७
वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते ।। ७८
– अध्यात्मोपनिषत् १२
निर्विकल्पा च चिन्मात्रा वृत्तिः प्रज्ञेति कथ्यते।। ७९
सा सर्वदा भवेद्यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते।। ८०
– अध्यात्मोपनिषत् ४४

क्रिया फल की इच्छा (सभी कर्त्तव्य की) के अभाव से क्रिया का नाश होता है एवं क्रियानाश हेतु फल की कामना का नाश तथा फल की कामना नाश से द्वैत वासना का क्षय होता है (एकमात्र ब्रह्मभाव का ही स्फुरण होता है)। उस द्वैत–वासना के क्षय से मोक्ष; जो यह जानते हैं, वे जीवनमुक्तपदवाच्य होते हैं। विकल्परहित (भ्रमशून्य) केवल ब्रह्म में ही वृत्ति (ब्रह्मज्ञान) को प्रज्ञा कहते हैं। जो इस ब्रह्मज्ञान से सर्वदा स्फुरित होते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ७७,७८,७९,८०

देहेन्द्रियेष्वहंभावइदंभावस्तदन्यके।। ८१
यस्य नो भवतः क्वापि स जीवन्मुक्त इष्यते।। ८२
– वराहोपनिषत्, ४/२४
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।। ९५
कुर्वतोऽकुर्वतो वापि स जीवन्मुक्त उच्यते।। ९६
– वराहोपनिषत्, ४/२५

जो व्यवहार दशा में राग द्वेष, भय आदि अनुरुप आचरण करके भी अपने अंतर में आकाश की तरह स्वच्छ (निर्मल) हों, जिनका अहंकृत भाव (कर्तृत्वाभिमान) नहीं है, इसलिए कर्तृत्वाभिमान से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि किसी में भी आसक्त नहीं होती, उन ब्रह्मवित् के विहित कर्मानुष्ठान एवं प्रतिषिद्ध कर्मानुष्ठान करने पर भी उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ९३,९४,९५,९६

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । ९७
हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ९८
– वराहोपनिषत्, ४/२६
यः समस्तार्थजालेषु व्यवहार्यपि शीतलः। ९९
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते।। १००
– वराहोपनिषत्, ४/२७

जिनके द्वारा समस्त लोक किसी प्रकार उत्तेजित नहीं होता एवं जो समस्त लोक में किसी प्रकार का उद्वेग प्रदान नहीं करते, जो सुख–दुःख भय से मुक्त हैं केवल ब्रह्मभाव में स्थित, जो दृश्य प्रपञ्च में अपने शरीर धारण आदि व्यवहारयुक्त होकर भी अपने ब्रह्मभाव में प्रसन्न आत्मा एवं परार्थ में भी पूर्ण ब्रह्मभाव द्वारा सर्वत्र परिपूर्ण रूप में विराजित हैं उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। ९७,९८,९९,१००

प्रजहाति यदा कामान्सर्वांश्चित्तगतान्मुने।। १०१
मयि सर्वात्मके तुष्टः स जीवन्मुक्त उच्यते।। १०२
– वराहोपनिषत्, ४/२८
चैत्यवर्जितचिन्मात्रे पदे परमपावने।। १०३
अक्षुब्धचित्तो विश्रान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।। १०४
– वराहोपनिषत्, ४/२९

हे मुने, जो चित्तगत समस्त कामनाओं का परित्याग कर सर्वात्मक ब्रह्म में परितुष्ट होते हैं एवं चैत्य (चित्तवित्त–विकल्पित विषय) वर्जित चिन्मात्र परम पवित्र ब्रह्म में ही क्षोभ रहित होकर विश्राम करते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। १०१,१०२,१०३,१०४

इदं जगदहं सोऽयं दृश्यजातमवास्तवम् ।। १०५
यस्य चित्ते न स्फुरति स जीवन्मुक्त उच्यते।। १०६
– वराहोपनिषत्, ४/३०
शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः ।। १०७
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।। १०८
– महोपनिषत्, २/६१

यही जगत, यही वह, यह अवास्तव दृश्य प्रपञ्च जिनके चित्त को स्फुरित

नहीं करते एंव जो अपनी ब्रह्म दृष्टि द्वारा जन्म–मरण–परस्पर रूप संसार रचना को शांत करते हैं, जो षोड़ष–कलायुक्त होकर भी कला (अंश) रहित एवं जो चित्तयुक्त होकर भी अपने ब्रह्मभाव द्वारा चित्तव्यापार रहित होते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। १०५,१०६,१०७,१०८

चिदात्माहं परात्माहं निर्गुणोऽहं परात्परः।। १०९
आत्ममात्रेण यस्तिष्ठेत्स जीवन्मुक्त उच्यते।। ११०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/१

देहत्रयातिरिक्तोऽहं शुद्धचैतन्यमस्म्यहम्।। १११
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ११२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/२

"मैं ही चिदात्मा, मैं ही परमात्मा, मैं ही निर्गुण, मैं ही परात्पर (सर्वश्रेष्ठ)" हूँ, इस प्रकार ब्रह्मभाव में अवस्थान करते हैं, एवं "त्रिविध स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर से मैं अतीत हूँ, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप, मैं ही ब्रह्म हूँ" जो इस प्रकार के भाव से संपन्न होते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं।। १०९,११०,१११,११२

यस्य देहादिकं नास्ति यस्य ब्रह्मेति निश्चयः।। ११३
परमानन्दपूर्णो यः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ११४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/३

नित्यानन्दः प्रसन्नात्मा ह्यन्यचिन्ताविवर्जितः।। ११५
किंचिदस्त्विहीनो यः स जीवन्मुक्त उच्यते।। ११६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/६–७

जिनके शरीर आदि नहीं हों अर्थात् ब्रह्म से भिन्न अन्य देहादि प्रपञ्च से उत्पन्न वस्तु कुछ भी नहीं, जिन्हें इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त है एवं जो परमानन्द–परिपूर्ण, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान के कारण जो अखण्डैकरस ब्रह्मानन्द में प्रसन्नचित्त, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य चिंताओं से रहित एवं प्रतिभाषित ज्ञान के द्वारा 'अस्ति', 'नास्ति' इत्यादि भ्रम से रहित हैं, उस ब्रह्मवेत्ता पुरुष को जीवन्मुक्त कहते हैं।। ११३, ११४,११५,११६,

अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्मेति निश्चयः ।। ११७
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/२९

चिदहं चिदहं चेति स जीवन्मुक्त उच्यते।। ११८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/३०

'मैं ही ब्रह्म हूँ', 'मैं ही ब्रह्म हूँ', 'मैं ही ब्रह्म हूँ' एवं 'मैं ही चित्तस्वरूप हूँ', 'मैं ही चित्तस्वरूप हूँ', इस प्रकार निश्चय ज्ञान युक्त पुरुष को जीवन्मुक्त कहते हैं।। ११७,११८

इति अष्टं प्रकरणं समाप्तं।।

सार्धान्तिकस्वानुभूतिवाक्यानि॥ ९

जीवन्मुक्ति महावाक्यार्थ से प्राप्त जीवन्मुक्ति पदारूढ़ की स्वानुभूति (मैं ही ब्रह्म हूँ) के समस्त वाक्य उद्धृत हैं।

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १

— इशोपनिषत्, १६

जो विश्व प्रपञ्च के आधारस्वरुप परम पुरुष ईश्वर के रूप में विराजमान है, वह पुरुष मैं ही हूँ॥ १

तद्योऽहं सोहसौ योहसौ सोऽहम् ॥ २

— ऐतरेयोपनिषत, २/४/३

देह में प्रज्ञात्मा एवं प्राणाध्यात्मा के रूप में व आदित्य मंडल में जो पुरुष विराजमान है, मैं वही हूँ (प्रत्यक एवं पर चैतन्य के एकात्म हेतु देहस्थ एवं आदित्यगत चैतन्य एक॥ २

तं शान्तमचलमद्वयानन्दविज्ञानघन एवास्मि॥ ३

— परमहंसोपनिषत्

तं पदवाच्य, शांत, निर्विकार स्वरूप, अचल, अद्वय, आनन्द एवं चिद्घन स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूँ॥ ३

तं पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मैवाहमस्मी॥ ४

— परमहंसोपनिषत्

तं पदवाच्य, पूर्ण, आनन्द एवं चित्स्वरूप ब्रह्म मैं ही हूं॥ ४

त्वं वाऽहमस्मि भगवो देव तेऽहं वै त्वमसि॥ ५

— वराहोपनिषत्, २/३४

हे भगवन ! सत्मात्ररूप देव ! तुम ही मैं हूँ एवं मैं ही तुम हो॥ ५

सच्चिदानन्दात्मकोऽहमजोहहं परिपूर्णोऽहमस्मि ॥ ६

—त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, अष्टम अध्याय।

मैं सच्चिदानन्दस्वरूप आज एवं पूर्णस्वरूप हूँ॥ ६

शुद्धाद्वैतब्रह्माहम्॥ ७

— मण्डलब्राह्मणोपनिषत्, २/४

मैं शुद्ध एवं अद्वैत ब्रह्म हूँ॥ ७

वाचामगोचरनिराकारपरब्रह्मस्वरूपोऽहमेव॥

— त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्, अष्टम अध्याय

वाक्य से अगोचर, निराकार, परम ब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ॥ ८

सदोज्ञवलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धहरः सर्वदा द्वैतरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति संभाव्याहमित्यों तत्सद्यत्परंब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः ॥ सोऽहमों तद्रामभद्रपरंज्योतीः सोऽहमोमि॥ ९

— श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत्

सदा उज्ज्वल, अविद्या एवं अविद्या कार्यविहीन, निज बन्ध हरणकारी, सर्वदा द्वैतरहित, आनन्द स्वरूप, समस्त का अधिष्ठान, सत्स्वरूप, अविद्या–तमो–मोह–विवर्जित ओंकार स्वरूप मैं ही हूँ; जो परम ब्रह्म रामचंद्र एवं चिन्मय हैं, वह मैं ही हूँ; ओंकार स्वरूप जो रामभद्र परज्योति एवं आनन्द रस स्वरूप हैं, वह मैं ही हूँ॥ ९

तत्परः परमपुरुषः पुराणपुरुषोत्तमो नित्य शुद्धबुद्धमुक्तसत्य
परमानन्दानन्ताद्वैयपरिपूर्णः परमात्मा ब्रह्मैवाहं रामोहस्मि ॥ १०

वह परम पुरातन, पुरुषोत्तम, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव, सत्यपरमानन्दस्वरूप, अनन्त, अद्वैय, परिपूर्ण–परमात्मा ब्रह्म मैं ही हूँ, मैं ही रामचंद्र हूँ। १०

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥ ११
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ १२

— कैवल्योपनिषत्, १/१८

तीन (नाम, रूप व कर्म) धामों में भोज्य, भोक्ता एवं भोग रूप में जो कुछ भी है, उन सब से विलक्षण (अलग), साक्षीस्वरूप चिन्मात्र एवं सदाशिव मैं ही हूँ॥ ११, १२

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम॥ १३
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥ १४

— कैवल्योपनिषत्, १/१९

मुझसे ही सब कुछ उत्पन्न हुआ है, मुझमें ही सब कुछ स्थित है और मुझमें ही यह समस्त लय को प्राप्त होता है। वह द्वैतरहित ब्रह्म मैं ही हूँ॥ १३,१४

निर्वाणोहस्मि निरीहोहस्मि निरंशोहस्मि निरीप्सितः ॥ १५

— संन्यासोपनिषत्, २/५६

चिदात्माऽस्मि निरंशोऽस्मि परापरविवर्जितः ॥
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/१३

ब्रह्मैवाहं सर्ववेदान्तवैदं
नाहं वेदां व्योमवातादिरुपम ॥ १७
रूपं नाहं नाम नाहं न कर्म
ब्रह्मैवाहं सच्चिदानन्दरुपम ॥ १८
– सर्वोसारोपनिषत्, ११

मैं ही निर्वाण (मुक्ति) स्वरूप, मैं ही चेष्टाशून्य, मैं ही अंश एवं ईप्सा (इच्छा) रहित हूँ। मैं ही चिदात्मा, मैं ही अंश एवं परापरभाव रहित हूँ। सर्व–वेदान्तवेद्य ब्रह्म मैं ही हूँ, मैं ही व्योमवत आदि रूपों में वेद्य नहीं हूँ। मैं रूप, नाम या कर्म भी नहीं हूँ। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ॥ १५,१६,१७,१८

नित्यः शुद्धौ बुद्धमुक्तस्वभावः
सत्यः सूक्ष्मः संविभुश्चाद्वितीयः ॥ १९
आनन्दाब्धिर्यः परः सोऽहमस्मि
प्रत्यग्धातुर्नात्र संशीतिरस्ति ॥ २०
– मैत्रेय्युपनिषत्, १/११

सोऽहमर्कः परं ज्योति
रर्कज्योतिरहं शिवः ॥ २१
– महावाक्योपनिषत्, ५

आत्मज्योतिरहं शुक्रः
सर्वज्योतिरसावदोम् ॥ २२
– वनदुर्गोपनिषत्, ११२

नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, सत्यस्वरूप सूक्ष्म होकर भी विभु (सर्वव्यापक), अद्वितीय एवं आनन्द सागर स्वरूप मैं ही प्रपञ्चाधार हूँ; मैं ही परमब्रह्म हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है। मैं स्थूल प्रपञ्च में अवभासक सूर्य, मैं ही परम ज्योति, सूर्यज्योति शिव भी मैं, आत्मज्योति शुक्र एवं सर्वज्योति भी मैं ही हूँ॥ १९,२०,२१,२२

द्वैतभावविमुक्तोऽस्मि सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ २३

– अन्नपूर्णोपनिषत् ५/६८

शुद्धो बोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदाशिवः ॥ २४
– अध्यात्मोपनिषत्। ६९

निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि
निष्कलोऽस्मि निराकृतिः ॥ २५
निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि
निरालम्बोऽस्मि निर्द्वयः ॥ २६

मैं द्वैत भाव रहित एवं सच्चिदानन्द लक्षण समन्वित, मैं शुद्ध ज्ञान मात्र, मैं नित्य मुक्त एवं सदाशिव हूँ। मैं निष्क्रिय, विकार रहित, निर्गुण एवं आकृति रहित, मैं विकल्प रहित, नित्य, आलंबन व द्वैतरहित हूँ॥ २३, २४, २५,२६

केवलाखण्डबोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः ॥ २७
– कुण्डिकोपनिषत्, २६

सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ २८
– वराहोपनिषत्, ३/२

केवलं चित्सदानन्दब्रह्मैवाहं जनार्दनः ॥ २९
– वराहोपनिषत्, ३/१९

शुभाशुभसंकल्पैः सशान्तोहस्मि निरामयः॥ ३०

मैं केवल अखण्ड ज्ञान स्वरूप, मैं निरंतर (स्वयं) एवं स्वयं ही आनन्द स्वरूप हूँ। जो परमात्मा सत्य, ज्ञान एवं अनन्त है, वह मैं ही हूँ। मैं शुद्ध चिन्मय सदानन्द ब्रह्म एवं जनार्दन हूँ। मैं ही शुभ एवं अशुभ संकल्प से शून्य व निरामय हूँ॥ २७,२८,२९,३०

नष्टेष्टानिष्टकलनः संविन्मात्रपरोहस्म्हम् ॥ ३१
– महावाक्यरत्नावली, ९

अन्तर्याम्यहमग्राह्योऽनिर्देश्योऽहमलक्षणः ॥ ३२
– ब्रह्मविद्योपनिषत्, ८४

अद्वैतोऽहमपूर्णोऽहमबाह्योऽहमनन्तरः ॥ ३३
– ब्रह्मविद्योपनिषत्, ८८

अद्वयानन्दविज्ञानघनोऽस्म्यहमविक्रियः ॥ ३४
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ८९

इष्ट–अनिष्ट ज्ञान से शून्य केवल ज्ञान मात्र परम ब्रह्म मैं ही हूँ। मैं अंतर्यामी, अग्राह्य (ग्रहण के अयोग्य), अनिर्देश्य एवं लक्षणवर्जित अर्थात् निर्विशेष स्वरूप हूँ। मैं अद्वैत, पूर्णस्वरूप, वाक्य से अतीत एवं व्यवधान रहित हूँ। मैं अद्वय, आनन्द एवं विज्ञानघनस्वरूप व निर्विकार हूँ॥ ३१,३२,३३,३४

अविद्याकार्यहीनोऽहमवाग्रसनगोचरः ॥ ३५
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९०
आत्मचैतन्यरूपोऽहमहमानन्दचिद्घनः ॥ ३६
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९१
आत्मकामोऽहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्म्यहम् ॥ ३७
चिदानन्दोऽस्म्यहं चेता चिद्धनश्चिन्मयोऽस्म्यहम् ॥ ३८
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९५

मैं अविद्याकार्यशून्य, वाक्य एवं मन से अगोचर, आत्मचैतन्यस्वरूप आनन्द एवं चिद्घन् स्वरूप हूँ। मैं आप्तकाम, आकाश आदि भूत भौतिक पदार्थों से श्रेष्ठ परमात्मा एवं ईश्वर हूँ। मैं चैतन्य एवं आनन्दस्वरूप ज्ञाता, चिद्घन् एवं चिन्मय हूँ॥ ३५, ३६,३७,३८

ज्योतिर्मयोऽस्म्यहं ज्यायाञ्ज्योतिषां ज्योतिरस्म्यहम् ॥ ३९
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९५
नित्योऽहं निरवद्योऽहं निष्क्रियोऽस्मि निरञ्जनः ॥ ४०
निर्मलो निर्विकल्पोऽऽहं निराख्यातोऽस्मि निश्चलः ॥ ४१
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९७
निर्विकारो नित्यपूतो निर्गुणो निःस्पृहोऽस्म्यहम् ॥ ४२
निरिन्द्रियो नियन्ताहं निरपेक्षोऽस्मि निष्कलः ॥ ४३
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९८
पुरुष : परमात्माहं पुराणः परमोऽस्म्यहम् ॥ ४४
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, ९९

मैं ज्योतिर्मय, सर्वापेक्षा वृद्ध एवं ज्योति की भी ज्योति हूँ। मैं नित्य स्वरूप,

निरवद्य, निष्क्रिय एवं निरंजन हूँ। मैं निर्मल स्वभाव, निर्विकल्प, नामवर्जित एवं निश्चय स्वरूप हूँ। मैं निर्विकार, नित्य पवित्र, निर्गुण एवं निःस्पृह हूँ। मैं इंद्रियवर्जित, जगत का नियंता, निरपेक्ष एवं अंश रहित हूँ। मैं परम पुरुष, पुराण पुरुष एवं परमात्मा स्वरूप हूँ॥ ३९,४०,४१,४२,४३,४४

पूर्णानन्दैकबोधोऽहं प्रत्यगेकरसोऽस्म्यहम् ॥ ४५
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, १००
प्रज्ञातोऽहं प्रशान्तोऽहं प्रकाशः परमेश्वर : ॥ ४६
एकधा चिन्त्यमानोऽहं द्वैताद्वैतविलक्षणः ॥ ४७
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, १०१
शुद्धोऽस्मि शुक्रः शान्तोऽस्मि
शाश्वतोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ ४८
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, १०४
अहं सकृद्विभातोऽस्मि स्वे महिम्नि सदा स्थितः ॥ ४९
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, १०५
सच्चिदानन्दमात्रोऽहं स्वप्रकाशोऽस्मि चिद्धनः ॥ ५०
— ब्रह्मविद्योपनिषत्, १०९

मैं ही पूर्णस्वरूप आनन्द एवं बोधस्वरूप हूं। मैं ही प्रत्येक (जीवात्मा) एवं सदा एकरस हूँ। मैं ही प्रज्ञास्वरूप प्रशांत, प्रकाशमय परमेश्वर हूँ। मैं एक रूप में चिन्त्यमान होकर रहता हूँ, मैं द्वैत या अद्वैतविलक्षण निर्विशेष ब्रह्म हूँ ! मैं शुद्ध स्वरूप, मैं स्वच्छ होने के कारण शुक्र, मैं शांत स्वरूप, नित्य एंव कल्याणमय शिव हूँ। मैं अपनी महिमा में स्थित होकर स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ। मैं सच्चिदानन्दस्वरूप, स्वप्रकाश एवं चिद्घन् हूँ॥ ४५,४६,४७,४८,४९,५०

मानावमानहीनोऽस्मि निर्गुणोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ ५१
द्वैताद्वैतविहीनोऽस्मि द्वनद्वहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ॥ ५२
—मैत्रेय्युपनिषत्, ३/४
भावाभावविहीनोऽस्मि भासाहीनोऽस्मि भास्म्यहम् ॥ ५३
शून्याशून्यप्रभावोऽस्मि शोभनाशोभनोऽस्म्यहम् ॥ ५४
—मैत्रेय्युपनिषत्, ३/५

सदसद्भेदहीनोऽस्मि संकल्परहितोऽस्म्यहम् ।। ५५

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/७

नानात्मभेदहीनोऽस्मि ह्यखण्डानन्दविग्रहः ।। ५६

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/८

मैं मान व अपमान से रहित निर्गुण एवं सदाशिव हूँ। मैं द्वैत एवं अद्वैत भाववर्जित व द्वंद्वरहित, मैं ही परम ब्रह्म हूँ। मैं निर्विशेष होने के कारण भाव व अभावहीन हूँ, मैं भाषा वर्जित एवं ज्योतिस्वरूप हूँ। मैं शून्य एवं अशून्य भाव में, मैं शोभन एवं अशोभन, मैं सत् असत्भेदवर्जित एवं संकल्परहित हूँ। मैं नाना आत्मरूप भेद वर्जित एवं अखण्ड आनन्द स्वरूप हूँ।। ५१,५२,५३,५४,५५,५६

बन्धमोक्षादिहीनोऽस्मि शुद्धब्रह्मास्मि सोऽस्म्यहम् ।।

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/९

चित्तादिसर्वहीनोऽस्मि परमोऽस्मि परात्परः ।। ५८

सदा विचाररूपोऽस्मि निर्विचारोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ।। ५९

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१०

ध्यातृध्यानविहीनोऽस्मि ध्येयहीनोऽस्मि सोऽस्म्यहम् ।। ६०

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/११

मैं बन्धन एवं मोक्षविहीन, मैं शुद्ध ब्रह्मस्वरूप हूँ। मैं चित्त आदि इंद्रियों से विहीन परम पुरुष एवं सर्वश्रेष्ठ हूँ। मैं सदा विचार रूप एवं मैं ही निर्विचार स्वरूप हूँ। मैं ध्यात्री, ध्यान एवं ध्येय भाव से विवर्जित हूँ। मैं ही वह ब्रह्म हूँ।। ५७,५८,५९,६०

लक्ष्यालक्ष्यविहीनोऽस्मि लयहीनरसोऽस्म्यहम् ।। ६१

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१३

मातृमानविहीनोऽस्मि मेयहीनः शिवोऽस्म्यहम्।। ६२

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१३

सर्वेन्द्रियविहीनोऽस्मि सर्वकर्मकृदप्यहम् ।। ६३

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१५

मुदितामुदिताख्योऽस्मि सर्वमौनफलोऽस्म्यहम् ।। ६४

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१६

मैं लक्ष्य एवं अलक्ष्य भाववर्जित। मैं लय रहित एवं रस स्वरूप। मैं मातृ, मान व मेय भाव रहित एवं शिव स्वरूप हूँ। मैं--सर्व इंद्रिय वर्जित एवं समस्तकर्मकारी, मैं मुदिता एवं अमुदिता नामों से जाना जाता हूँ और सर्वमौन फलस्वरूप हूँ।। ६१,६२,६३,६४

षड्विकारविहीनोऽस्मि षट्कोशरहितोऽस्म्यहम् ।। ६५

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१८

देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बरसुखोऽस्म्यहम् ।। ६६

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/१९

अखण्डाकाशरूपोऽस्मि ह्यखण्डाकारमस्म्यहम्।। ६७

प्रपञ्चमुक्तचित्तोऽस्मि प्रपञ्चरहितोऽस्म्यहम् ।। ६८

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/२०

मैं षट्विकारों से वर्जित छह कोश रहित हूँ। मैं देशकाल– परिच्छेद–विवर्जित एवं दिगंबर हूँ। मैं अखण्ड आकाश स्वरूप एवं अखण्डाकार रूप, मैं प्रपञ्च मुक्त चित्तस्वरूप एवं प्रपञ्च रहित भी मैं ही हूँ।। ६५, ६६, ६७,६८

सर्वप्रकाशरूपोऽस्मि चिन्मात्रज्योतिरस्म्यहम् ।। ६९

कालत्रयविमुक्तोऽस्मि कामादिरहितोऽस्म्यहम्।। ७०

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/२१

मुक्तिहीनोऽस्मि मुक्तोऽस्मि मोक्षहीनोऽस्म्यहं सदा।। ७१

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/२२

गन्तव्यदेशहीनोऽस्मि गमनादिविवर्जितः ।। ७२

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/२३

सर्वदा समरूपोऽस्मि शान्तोऽस्मि पुरुषोत्तमः ।। ७३

–मैत्रेय्युपनिषत्, ३/२४

चिदक्षरोहहं सत्यहहं वासुदेवोहजरोहमवः ।। ७४

– तेजोबिन्दूपनिषत् १६/६९

मैं सर्वप्रकाश स्वरूप हूँ; मैं चिन्मात्र ज्योति स्वरूप हूँ। मैं काल त्रय विमुक्त एवं कामादि रहित हूँ। मैं मुक्तिहीन एवं मुक्ति स्वरूप व सर्वदा मोक्षविहीन हूँ। सर्वव्यापक होने के कारण मैं गन्तव्यदेशहीन एवं गमन आदि से रहित

हूँ। मैं सर्वदा समरूप एवं शांत स्वरूप पुरुषोत्तम हूँ। मैं चित्तस्वरूप एवं अक्षय, मैं सत्यस्वरूप वासुदेव, अजर एवं अमर हूँ।। ६९,७०,७१,७२,७३,७४

अहमेवाक्षरं ब्रह्म वासुदेवाख्यामद्वयम् ।। ७५
नारदपरिब्राजकोपनिषत्, ३/२१
परब्रह्मस्वरूपोऽहं परमानन्दमस्म्यहम् ।। ७६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१
केवलं ज्ञानरूपोऽहं केवलं परमोऽस्म्यहम् ।। ७७
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१
केवलं शान्तरूपोऽहं केवलं चिन्मयोऽस्म्यहम् ।। ७८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२

मैं अक्षर ब्रह्म स्वरूप एवं वासुदेव आख्या अद्वय हूँ। मैं परम ब्रह्म स्वरूप एवं मैं ही परमानन्द स्वरूप हूँ। केवल ज्ञान स्वरूप एवं मैं ही परम ब्रह्म स्वरूप हूँ। मैं केवल शांत स्वरूप एवं मैं ही चिन्मय स्वरूप हूँ।। ७५,७६,७७,७८

केवलंनित्यरूपोऽहं केवलं शाश्वतोऽस्म्यहम् ।। ७९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२
केवलं सत्त्वरूपोऽहमहं त्यक्तग्राहमस्म्यहम् ।। ८०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३

मैं केवल नित्य स्वरूप एवं सनातन हूँ। मैं सत्य एवं अहं भाव से रहित ब्रह्म स्वरूप हूँ।। ७९,८०

केवलं तुर्यरूपोऽस्मि तुर्यातीतोऽस्मि केवलः ।। ८१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२
केवलाकाररूपोऽस्मि शुद्धरूपोऽस्म्यहं सदा।। ८२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/५
निर्विकल्पस्वरूपोऽस्मि निरीहोऽस्मि निरामयः ।।८३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/६
अपरिच्छिन्नरूपोऽस्मि ह्यखण्डानन्दरूपवान् ।। ८४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/७

मैं केवल ओंकार का चतुर्थस्थानीय एवं तुर्यातीत भी मैं ही हूँ। मैं केवल

आकार एवं शुद्ध स्वरूप हूँ। मैं निर्विकल्प स्वरूप निरीह एवं निरामय हूँ। मैं अपरिच्छिन्न स्वरूप अनन्त एवं आनन्दरूप युक्त हूँ।। ८१, ८२,८३,८४

आत्मारामस्वरूपोऽस्मि ह्यहमात्मा सदाशिवः ।। ८५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/९
आदिमध्यान्तहीनोऽस्मि ह्याकाशसदृशोऽस्म्यहम् ।। ८६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१०
नित्यशुद्धचिदानन्दसत्तामात्रोऽहमव्ययः ।। ८७
नित्यबुद्धविशुद्धैकसच्चिदानन्दमस्यहम् ।। ८८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/११

मैं आत्माराम स्वरूप, मैं ही आत्मस्वरूप सदाशिव हूँ। मैं आदि मध्य एवं अन्त शून्य, मैं ही आकाश सदृश्य व्यापक हूँ। मैं नित्य बुद्ध स्वरूप एकमात्र विशुद्ध स्वभाव एवं सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ।। ८५,८६,८७,८८

भूमानन्दस्वरूपोऽस्मि भाषाहीनोऽस्म्यहं सदा। ८९
सर्वाधिष्ठानरूपोऽस्मि सर्वदा चिद्घनोऽस्म्यहम् ।। ९०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१३
चित्तर्वत्तिविहीनोऽहं चिदात्मैकरसोऽस्म्यहम् ।। ९१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१४
अहं ब्रह्मैव सवं स्यादहं चैतन्यमेव हि ।। ९२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१६

मैं भूमानन्द (अतिशय आहलाद) स्वरूप, एवं सर्वदा भाषाहीन हूँ। मैं सर्वाधिष्ठान स्वरूप एवं मैं ही सदा चिद्घन स्वरूप हूँ। मैं चित्तवृत्ति रहित, चिदात्मक एवं मैं ही एकमात्र रसात्मक हूँ। मैं ही ब्रह्म, मैं ही सर्वमय एवं मैं ही चैतन्य स्वरूप हूँ।। ८९,९०,९१,९२

अहमेवाहमेवास्मि भूमाकाशस्वरूपवान् ।। ९३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१८
अहमेव महानात्मा ह्यहमेव परात्परः ।। ९४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१७
अहमन्यवदाभामि ह्यहमेव शरीरवत् ।। ९५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१७

अहंशिष्यवदाभामि ह्यं लोकत्रयाश्रयः ।। ९६
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१८

मैं अहमाकार (अहं स्वरूप) एवं भूमाकार स्वरूप हूँ। मैं ही महान आत्मा, मैं ही परात्पर स्वरूप हूँ। मैं ही अन्य रूप में प्रतिभात होता हूँ एवं मैं ही शरीर की तरह प्रत्यक्ष हूँ। मैं ही शिष्य रूप में प्रकाशित होता हूँ एवं मैं इन तीनों लोकों का आश्रय हूँ।। ९३,९४,९५,९६

अहं कालत्रयातीत अहं वेदैरुपासितः ।। ९७
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१८
अहं शास्त्रेण निर्णीत अहं चित्ते व्यवस्थितः ।। ९८
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/१९
आनन्दघन एवाहमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ।। ९९
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२६
आत्मनात्मनि तृप्तोऽस्मि ह्यरूपोऽस्म्यहमव्ययः ।। १००
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२८

मैं ही तीनों कालों (वर्तमान, भूत, भविष्य) से अतीत, ब्रह्मस्वरूप; मैं ही वेद द्वारा उपासित होता हूँ। मैं ही शास्त्र द्वारा निर्णीत एवं मैं ही समस्त चित्तों में अंतर्यामी रूप में निवास करता हूँ। मैं आनन्दघन स्वरूप एवं मैं ही केवलमात्र ब्रह्म हूँ। मैं अपने ब्रह्मस्वरूप में ही तृप्त, निराकार एवं अव्यय हूँ।। ९८,९९,१००

आकाशादपि सूक्ष्मोऽहमाद्यन्ताभाववानहम् ।। १०१
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३१
सत्तामात्रस्वरूपोऽह शुद्धमोक्षस्वरूपवान् ।। १०२
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३०
सत्यानन्दस्वरूपोऽहं ज्ञानानन्दवनोऽस्म्यहम्।। १०३
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३१
नामरूपविमुक्तोऽहमहमानन्दविग्रहः।। १०४
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३६

मैं आकाश से भी सूक्ष्म, आदि एवं अस्त भाव रहित हूँ। मैं सत्तामात्र स्वरूप शुद्ध एवं मोक्षस्वरूप हूँ। मैं सत्य आनन्द स्वरूप, मैं ही ज्ञान एवं आनन्द घन स्वरूप हूँ। मैं नाम रूप वर्जित एवं मैं ही महा आनन्द की मूर्ति स्वरूप हूँ।। १०१,१०२,१०३,१०४

आदिचौतन्यमात्रोऽहमखण्डैकरसोऽस्म्यहम् ।। १०५
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३७
सर्वत्र तृप्तिरुपोऽहं परामृतरसोऽस्म्यहम् ।। १०६
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३९
एकमेवाद्वितीयं सद्ब्रह्मैवाहं न संशयः ।। १०७
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/३९
अहमेव परं ब्रह्म हाहमेव गुरोर्गुरुः ।। १०८
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/४४

मैं आदि चैतन्य मात्र, अखण्ड एवं एक रस स्वरूप हूँ। मैं सर्वत्र पूर्णस्वरूप, मैं ही परम अमृत रस स्वरूप हूँ। मैं ही एकमात्र अद्वितीय एवं सत ब्रह्मस्वरूप हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है। मैं ही परम ब्रह्म, मैं ही गुरुओं का भी गुरु हूँ।। १०५,१०६,१०७,१०८

सर्वज्ञानप्रकाशोहस्मि मुख्यविज्ञानविग्रहः ।। १०९
तुर्यतुर्य प्रकाशोहस्मि तुर्ष्यतुर्ष्यदिवर्जितः ।। ११०
दृष्टिस्वरूपं गगनोपमं परं
सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।। १११
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं
तदेव चाहं सक्लं विमुक्त ॐ ।। ११२
— मुक्तिकोपनिषत्, २/७३

मैं ही सर्वज्ञान का प्रकाश एवं मुख्य विज्ञान की मूर्तिस्वरूप हूँ। मैं तुर्य एवं अतुर्य के प्रकाश स्वरूप, मैं ही तुर्य एवं अतुर्य भाव वर्जित हूँ। मैं आकाश की तरह दृशि स्वरूप (ज्ञानमात्र), मैं आकाश की तरह पर (श्रेष्ठ), मैं ही स्वयं प्रकाश, अज एवं अक्षर हूँ। मैं निर्लिप्त, सर्वगत अद्वयस्वरूप हूँ। मैं कला रहित, विमुक्त स्वभाव एवं ओंकार स्वरूप हूँ ।। १०९,११०,१११,११२

अहं ब्रह्मास्मि मत्रोऽयं जन्मपापं विनाशयेत् ।। ११३
— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/६१

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं भेदबुद्धिं विनाशयते् ।। ११४

— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/६३

'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस मंत्र का जन्म, पाप एवं जीवात्मा व परमात्मा में भेद बुद्धि विनाश करता है।। ११३, ११४

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं कोटिदोषं विनाशयेत् ।। ११५

— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/६८

अहं ब्रह्मास्मि मन्त्रोऽयं ज्ञानानन्दं प्रयच्छति ।। ११६

— तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/७३

मैं ही ब्रह्म हूँ यह मंत्र करोड़ों दोष का विनाश कर ज्ञान एवं आनन्द प्रदान करता है।। ११५,११६

सर्वमन्त्रान्समुत्सृज्य एतं मन्त्रं समभ्यसेत् ।। ११७
सद्यो मोक्षमवाप्नोति नात्र संदेहमण्वपि ।। ११८

— तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/७४

समस्त मंत्रों का त्याग कर अहं ब्रह्मास्मि (मैं ही ब्रह्म हूं) इस मंत्र का अभ्यास करो। इस मंत्र का अभ्यास करने पर जल्दी ही मोक्ष प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं है।। ११७,११८

इति नवमं प्रकरणं समाप्तम् ।।

सार्धान्तिकसमाधिवाक्यानि।। १०

इस प्रकरण में समाधि के समस्त लक्षण उद्धृत हैं।

जीवात्मपरमात्मैक्यावस्था त्रिपुटीरहिता परमानन्दस्वरूपा शुद्धचैतन्यात्मिका भवति ।। १

— शाण्डिल्योपनिषत्, १/७२

ध्यान, ध्येय व ध्याता इस त्रिपुटि (त्रिविद), भेद से रहित जीवात्मा एवं परमात्मा की जो ऐक्यावस्था (अभेद भाव) होती है, जो सुख–दुःख के अभाव के वश परमानन्द स्वरूप एवं शुद्ध चैतन्यात्मिका (ब्रह्मभावात्मिका) होती है, इसी ब्राह्मी स्थिति को निर्विकल्प समाधि कहते हैं।।१

ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्धेयैकगोचरं चित्तं समाधिः ।। २

— पैङ्गलोपनिषत, तृतीय अध्याय

ध्यातृत्व भाव एवं ध्यान भाव का त्याग कर वायुशून्य स्थान में स्थित स्थिर दीप की तरह ध्येय मात्र विषय में चित्तावस्था को समाधि कहते हैं अर्थात् जब चित्त धातृ एवं ध्यान भाव (मैं ध्यान कर रहा हूँ, इसका ध्यान कर रहा हूँ इत्यादि) का त्याग कर निज स्वरूप शून्य की तरह ध्येय आकार में तन्मय होता है, तो ऐसी चित्तावस्था को समाधि कहते हैं।। २

वृत्तिशून्यं प्रचारशून्यं मनः परमात्मनि लीनं भवति ।। ३

कामादि वृत्ति शून्य एवं विषयों के प्रचार से शून्य होने पर मन परमात्मा में लय को प्राप्त होता है।।३

प्रान्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये परमात्मनि हृदि
संस्थतिते देहे लब्धशान्तिपदं गते तदा
प्रभातमनोबुद्धिशून्यं भवति।। ४

— भगवद्गीतोपनिषत्, १८/७१

ब्रह्मवित् पुरुष गुरुमुख से निकले शास्त्र के ज्ञान द्वारा एवं स्वानुभूति से विज्ञान प्राप्त होकर अपने हृदय स्थित ज्ञेय स्वरूप परमात्मा में 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार ज्ञान होने पर स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण त्रिविध देहाभिमान से रहित होकर शांतिपद लाभ करता है। उस समय उसके आत्मचैतन्य मन एवं बुद्धि शून्य भाव में विराज करते हैं अर्थात् समाधि अवस्था में

जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति इन अवस्थाओं में अतीत एवं वृत्ति (मन एवं बुद्धि) शून्य होकर आत्मा अपनी स्वप्रकाश अवस्था में विराज करती है।।

प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा धृतकुम्भको नासाग्र–
दर्शनदृढभावनया द्विकराङ्गुलिभिः षण्मुखीकरणेन
प्रणवध्वनिं निशम्य मनस्तत्र लीनं भवति।। ५

– मण्डलब्राह्मणोपनिषत्, २/२

चित्तविक्षेप के उन्मूलन के लिए कर्ण, नासिका व चक्षुद्वार सभी को दोनों हाथों की उंगली द्वारा षन्मुखी कर (उक्त इंद्रियों के छह मुंहों को बंद कर) नासाग्र (भृकुटि या भ्रू के बीच) भाग दर्शन कर रहा हूँ– इस प्रकार की दृढ़ भावना से युक्त होकर प्राण एवं अपान वायु की समता कर रेचक पूरक विहीन केवल मात्र कुम्भक कर प्राण एवं अपान वायु का ऐक्य करने पर हृदय में दीर्घ घंटानिनाद की तरह और अनाहताख्या प्रणवध्वनि सुनाई देती है। उसी प्रणव ध्वनि को श्रवण कर मन उस प्रणव के अवलंबन से युक्त होकर उसी में लय को प्राप्त होता है अर्थात् प्रणव स्वरूप परमात्मा में लीन होता है, इसी लयावस्था को समाधि कहते हैं।। ५

पयःस्त्रावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे
परिनष्टे मनोनाशो भवति ।। ६

– मण्डलब्राह्मणोपनिषत्, ३/१

गाय के स्तन से दूध दूहने के पश्चात उसके स्तनस्थित दूध जिस प्रकानिरुपद्रव में स्थित होता है, उसी प्रकार स्वइंद्रिय विषयों के अग्रहण हेतु योगी गण की इंद्रियों के परिनष्ट होने पर निरावलंबन (विषयाभाव के वश वृत्ति रहित) होने के कारण मन का भी नाश हो जाता है। इस मनोनाश (मनोवृत्तिरहित) अवस्था को समाधि कहते हैं।। ६

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।।७
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमांगतिम् ।। ८

– कठोपनिषत्, २/३/१०

जिस समय मन के साथ पञ्चज्ञानेन्द्रिय किसी विषय का ग्रहण न करें एवं बुद्धि चेष्टायुक्त न हो मन की उस वृत्तिरहित अवस्था को निविकल्प समाधि (परम गति) कहते हैं।। ७,८

संशांत सर्वसंकल्पा या शिलाब्दस्थितिः।। ९
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता सा स्वरुपस्थितिः परा।। १०

– महोपनिषत्, २/३/१०

पत्थर की तरह निर्विकार एवं अचल भाव से जिस अवस्था में समस्त संकल्प सम्यक रूप से शांत होते हैं उसी जाग्रत व निद्रा अवस्था वर्जित अवस्था को स्वरूप स्थिति या ब्रह्म रूप स्थिति या ब्रह्मरूपता कहते हैं।। ९,१०

मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्य प्रजायते ।। ११
यो मनःसुस्थिरो भावः सैवावस्था मनोन्मनी ।।

– शाण्डिल्योपनिषत्, १/२७

प्राण एवं अपान वायु के ऐक्य संपादन द्वारा जब सुषुम्ना नाड़ी के मध्य वायु संचारित होती है, तब मन में स्थिरता उत्पन्न होती है। मन के इस स्थिर भाव (वृत्तिरहित) को मन की उन्मनी अवस्था कहते हैं।। ११,१२

सरुपोहसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते ।। १३
मन का नाश होना ही जीवन्मुक्त का स्वरूप है।। १३
निद्राघरुपनाशस्त वर्तते देहमुक्तिके ।। १४

– महावाक्यरत्नावली, १०

विदेह मुक्ति निद्रारूप नहीं होती, तत्काल निद्रारूप पाप का नाश होता है। क्योंकि विदेह मुक्तावस्था में अंतःकरण चतुष्टय गोचर संकल्पादि वृत्ति का अभाव होता है।। १४

चित्ते चैत्यदशाहीने या स्थितिः क्षीणचेतसाम् ।। १५
सोच्यते शान्तक्लना जाग्रत्येव सुषुप्तता ।। १६

– अन्नपूर्णोपनिषत, २/१२

क्षीण चित्त योगियों के चित्त में संकल्पादि चैत्यदशा विहीनता के कारण निविकल्परूपिणी जो स्थिति रहती है, वह जागृत काल में भी विषयों के अग्रहण के वश सुषुप्तता एवं विकल्पशून्य निर्विकल्प समाधि के रूप में जानी जांती है।। १५,१६

नैतज्जाग्रन्न च स्वप्नः संक्ल्पानामसंभवात् ।। १७
सुषुप्तभावो नाऽप्येतदभावाज्जडतास्थितेः ।। १८

— अन्नपूर्णोपनिषत, ५/१०९

निर्विकल्प समाधि जाग्रत या स्वप्नावस्था नहीं है, क्योंकि उक्त समाधि में संकल्प का अभाव होता है। यह सुषुप्ति भाव भी नहीं है, क्योंकि सुषुप्तिवस्था में विषयों का ज्ञान न रहने से वह स्थिति की जड़ता मात्र (तामसिक वृत्ति मात्र) होती है, लेकिन निर्विकल्प समाधि सुषुप्ति की तरह जड़ता स्थिति का नाश करती है।। १७,१८

सत्वावबोध एवासौ वासनातृणपावकः ।। १९
प्रोक्तः समाधिशब्देर न तु तृष्णीमवस्थितिः ।। २०

ब्रह्मस्वरूप के ज्ञान को निर्विकल्प समाधि कहते हैं। उक्त समाधि अनन्त कोटि वासना रूपी तृणों को भस्म करने वाली अग्नि स्वरूप है; वह जड़ की तरह तृष्णी भाव की स्थिति नहीं है।। १९,२०

निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारतया पुनः ।। २१
वृत्तिविस्मरणं सम्यक्समाधिरभिधीयते ।। २२
— तेजोबिन्दूपनिषत्, १/३७

जाग्रद् आदि तीनों अवस्थाओं के रूप विकार रहित एवं निर्विशेष ब्रह्म के आकार में युक्त होकर योगी की ब्रह्माकार वृत्ति के विस्मरण को समाधि कहते हैं; क्योंकि उस समय समाहित योगी स्वयं ही ब्रह्म हो जाते हैं, उस ब्रह्माकार वृत्ति का भी विस्मरण होता है।। २१,२२

दृश्यासंभवबोधो हि ज्ञानं ज्ञेय चिदात्मकम् ।। २३
रतिर्बलोदिता यासौ समाधिरभिधीयते
— महोपनिषत्, ४/६२

"एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, यह दृश्यप्रपञ्च मिथ्या है, यह न तो उत्पन्न होता है न ही विद्यमान है" इस प्रकार दृश्यों के अभाव ज्ञान द्वारा ब्रह्म के अतिरिक्त दृश्य कल्पनामूलक राग द्वेष आदि क्षय को प्राप्त होते हैं, उसी राग द्वेष आदि से रहित तथा ज्ञान के बल से उत्थित ब्रह्म में जो रति होती है, उसे समाधि कहते हैं।। २३,२४

अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः ।। २५
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः ।। २६
— त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्, १६०–६१

'मैं ही परम ब्रह्म हूँ' एवं 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार सर्व वृद्धि निरोधक ब्रह्मसंस्थिति को समाधि कहते हैं।। २५,२६

समाधिः संविद्युतपत्तिः परजीवैकतां प्रति ।। २७
— जावालदर्शनोपनिषत् १०/१
ध्यानस्य विस्मृतिः सम्यक् समाधिरभिधीयते।। २८
— त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्, ३२

तत् व त्वं पदार्थों के लक्ष्य परमात्मा एवं जीवात्मा की एकता के वश मैं ही ब्रह्म हूँ इस संवि (ज्ञान) की उत्पत्ति होती है, उसे ही समाधि कहते हैं। 'मैं ही निर्विशेष ब्रह्म हूँ' इस प्रकार ध्यान के विस्मरण को समाधि कहते हैं।। २७,२८

समाहिता नित्यतृप्ता यथाभूतार्थदर्शिनी ।। २९
ब्रह्मन्समाधिशब्देन परा प्रज्ञोच्यते बुधैः ।। ३०
— अन्नपूर्णोपनिषत्, १/४८

हे ब्रह्मन ! 'ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है' इस प्रकार की समाहित अवस्था (एकाग्रता), 'मैं ही निर्विशेष ब्रह्म हूँ' इस प्रकार ब्रह्म में जो नित्य तृप्ति एवं जो यथाभूत अर्थ का प्रदर्शन करने वाली इस प्रकार की श्रेष्ठ प्रज्ञा हो उसे समाधि कहते हैं। (ऋतंभरा अत्र प्रज्ञेति योगदर्शन)।। २९,३०

अक्षुब्धा निरहंकारा द्वन्द्वेष्वननुपातिनी ।। ३१
प्रोक्ता समाधिशब्देन मेरोः स्थिरतरा स्थितिः ।। ३२
— अन्नपूर्णोपनिषत्, १/४९

'ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है' इस प्रकार की अनुभूति द्वारा श्वास या काम आदि वृत्ति द्वारा अक्षुब्ध अर्थात् विक्षेपरहित, देह आदि में अहं भाव से वर्जित, शीत उष्ण आदि के द्वंद्व से रहित, मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिरता की जो ब्राह्मी स्थिति है, उसे समाधि कहते हैं।। ३१,३२

निश्चिता विगातभीष्टा हेयोपादेयवर्जिता।। ३३
ब्रह्मन्समाधिशब्देन परिपूर्णा मनोगतिः ।। ३४
— अन्नपूर्णोपनिषत्, १/५०

हे ब्रह्मन् ! मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार के निश्चित ज्ञान, स्व अतिरिक्त अभ्युदय

रहित होना, (अज्ञान ही हेय एवं ज्ञान ही उपादेय है) ये उभय हेय एवं उपादेय वर्जित, सर्वत्र परिपूर्ण, ब्रह्मगोचर जो मनोगति (प्रज्ञा) होती है, उसे समाधि कहते हैं।। ३३,३४

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः ।। ३५
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ।। ३६
– सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्, १४

जिस प्रकार जल में सैन्धव लवण के परस्पर योग से समता प्राप्त होती है (मिश्रित हो जाते हैं), इसी प्रकार आत्मा एवं मन की एकता को समाधि कहते हैं।। ३५,३६

यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः ।। ३७
समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते ।। ३८
– सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषत्, १६

जीवात्मा एवं परमात्मा की जब समता होती है एवं जिस अवस्था में समस्त संकल्प विनष्ट हो जाते हैं, उसे समाधि कहते हैं।। ३७,३८

प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम् ।। ४७
सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते ।। ४८
– मुक्तिकोपनिषत्, २/५५

अहंकारपूर्ण विषयों में विकास, मनन एवं निश्चयात्मक ज्ञान इन त्रिविध ज्ञान रहित, जो निर्विशेष ब्रह्मज्ञान मात्र है, जिस ज्ञान से निरुपद्रव ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य ज्ञान शून्य, माया रहित एवं आभास वर्जित होता है, उस ज्ञान को समाधि कहते हैं।। ३९,४०

ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं बिना।। ४१
संप्रज्ञातसमाधिः स्याद् ध्यानाभासप्रकर्षतः ।। ४२

शरीर आदि अन्यभाव रहित होकर ध्यान के अभ्यास की एकाग्रता से उत्पन्न मन के ब्रह्माकार वृत्ति प्रवाह को संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।। ४१,४२

प्रशांतवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददीपकम् ।। ४३
असंप्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः ।। ४४
–मुक्तिकोपनिषत, २/५४

परमानन्द उद्दीपक, वृत्ति रहित (अपने अतिरिक्त स्मृति वृत्ति से निवृत्त) चित्त को योगी आदि प्रिय असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं।। ४३,४४

स्वानुभूतिरसावेशादृश्यशब्दाद्यपेक्षितुः ।। ४५
निर्विकल्पसमाधिः स्यान्निकतस्थितदीपवत् ।। ४६
– सरस्वतीरहस्योपनिषत्, २८,२९

'मैं ही निर्विशेष ब्रह्म हूँ' इस स्वानुभूति रूप रस के आवेश से दृश्यानुविद्ध, शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि में जब योगी उपेक्षा करता है, तब उसकी वातशून्य प्रदेश स्थित दीप की तरह स्थिर निर्विकल्प समाधि उत्पन्न होती है।। ४५,४६

प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं चिदात्मकम् ।। ४७
अतदर्व्यावृत्तिपोहसौ समाधिर्मुनिभावितः।। ४८
– मुक्तिकोपनिषत्, २/५५

जब प्रभा (साधारण ज्ञान), मन, बुद्धि रहित होकर योगी केवल चित्त स्वरूप हो जाते हैं, उस चिन्मात्रावस्था को जहां ब्रह्म से अलग अन्य समस्त के प्रति निषेधात्मक एवं जहां मुनि गण को एकान्त वांछनीय होता है, उस निर्विशेष ब्रह्माकार स्थिति को निर्विकल्प समाधि कहते हैं।। ४७, ४८

ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्णं मध्यपूर्णं शिवात्मकम् ।। ४९
साक्षाद्विधिमुखो ह्येष समाधिः परमर्धिकः ।। ५०
– मुक्तिकोपनिषत्, २/५६

अविद्यापदतुर्यभाग उर्द्धशब्दार्थ, तत्स्थूलांश अधःशब्दार्थ, तत्सूक्ष्म बीजभाव मध्यशब्दार्थ, एवस्तूत अविद्यापद व तत्कार्यजात दृश्यप्रपञ्च निज अज्ञान दृष्टि में अशिव होने पर ज्ञान दृष्टि में शिवात्मक (ब्रह्ममय) उस समय ब्रह्म प्रतियोगीरहित, उर्द्ध अधः एवं मध्य सर्वत्र पूर्णस्वरूप साक्षात होकर वही अवशिष्ट रहते हैं। वह विधिमुख अर्थात् ब्रह्ममुख प्रकटित समाधि परमार्थिकरूप अर्थात निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपिणी होती है।। ४९,५०

इति दशमं प्रकरणं समाप्तम।।

सार्धान्तिकाष्टविधस्वरूपवाक्येषुनानालिंगस्वरूपवाक्यानि।। ११

ब्रह्म के अष्टविध स्वरूप समस्त महावाक्यों के मध्य उनके नानालिंग स्वरूप समस्त वाक्यों को उद्धृत किया जा रहा है –

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच ँ स उ प्राणस्य प्राणः ।।१
– केनोपनिषत्, १/२

वह ब्रह्म श्रोत्रों का श्रोत्र है, मन का मन, वाक्यों का वाक्य एवं प्राण का भी प्राणस्वरूप अर्थात् श्रोत्र आदि उसकी शक्ति से ही अपने कार्य में व्यस्त अथवा वे ही श्रोत्र आदि रूप में विराजमान हैं।। १

यो वै भूमा तत् सुखम् ।। २
– छान्दग्योपनिषत्, ७/२३/१

यो वै भूमा तदमृतम् ।। ३
– छान्दग्योपनिषत्, ७/२४/१

जो अपरिछिन्न ब्रह्म है, उसे भूमा कहते हैं। वे ही एकमात्र सुखस्वरूप हैं, वे भूमा ब्रह्म ही आनन्द स्वरूप हैं।। २,३

नेति नेति न ह्येतस्मादिति नेत्यन्यत्परमस्तयथ नामधेयँ
सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ।। ४
– वृहदारण्यकोपनिषत्, २/३/६

(नेति) 'न इति' इस निषेध वाक्य द्वारा अविद्या के स्थूलांश को निषिद्ध करते हैं। (नेति) द्वितीय नकार द्वारा अविद्या का सूक्ष्मांश निषिद्ध होता है। तृतीय नेति द्वारा अविद्या का बीज भाव निषेध होता है। चतुर्थ नेति द्वारा अविद्या का तुर्यांश (चतुर्थांश)निषेध होता है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ भी है, वह समस्त नाम मात्र है, एकमात्र वे ही सत्य हैं, वे ही सत्य के सत्य हैं, वे ही प्राण रूप में सत्य स्वरूप हैं, वे ही समस्त प्रपञ्चों के मध्य एकमात्र सत्य स्वरूप हैं। (वाचारम्भणविकारनाम ध्यें मृत्तिकेत्योवसत्यम्)।। ४

रातेर्दातुः परायणम् ।।५
– महोपनिषत् २/९

वे ब्रह्म ही भक्त एवं दाताओं के एकमात्र श्रेष्ठ आश्रय हैं।। ५

स पर्यागाच्छुक्रमकाय–मव्रण–
मस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।। ६
– इशोपनिषत्, ८

वही ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हैं, वे शुक्र अर्थात ज्योतिर्मय, स्थूल, सूक्ष्म व कारणदेह रहित हैं। वे शरीर रहित होने के कारण छिद्र एवं नाड़ी शिराओं से वर्जित हैं। वे शुद्ध स्वरूप एवं शुद्ध स्वरूप होने के कारण पाप रहित हैं।। ६

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृत ।। ७
– आगमप्रकरणम् (माण्डक्योपनिषत् कारिका), २६

प्रणव ही (ओंकार) अपर ब्रह्म एवं पर ब्रह्म कहा जाता है।। ७

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः ।। २८
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ।। ९
– अवधूतोपनिषत्, ८

द्वैत मिथ्यत्व के निश्चित होने पर निरोध (प्रलय), उत्पत्ति (जन्म), बद्ध (संसारी जीव) एवं साधक भाव नहीं रहता, ब्रह्मज्ञानोदय मुमुक्षु नहीं, मुक्त भी नहीं। यही परमार्थता अर्थात् यथार्थ अवस्था है।। ८,९

अखण्डैकरसं शास्त्रमखण्डैकरसो त्रयी ।। १०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३

अखण्डैकरसो देह अखण्डैकरसं मनः ।। ११
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/७

वह ब्रह्म अखण्ड व एकरस, वही शास्त्र, वही अखण्ड व एकरस वेद विद्या है। वे अखण्ड एकरस देह स्वरूप (देहवत सर्वव्यापक) एवं वही अखण्ड एकरस मनः स्वरूप हैं।। १८,११

अखण्डैकरसं सूत्रमखण्डैकरसो विराट् ।। १२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१०

अखण्डैकरसा विद्या अखण्डैकरसोऽव्ययः ।। १३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/८

ब्रह्म अखण्ड एकरस सूत्रात्मा, वही अखण्ड एकरस विराट स्वरूप, वही

अखण्ड एक रस विद्या स्वरूप एवं वही अखण्ड एकरस अव्ययस्वरूप हैं।। १२,१३

अखण्डैकरसं गोप्यमखण्डैकरसः शशी ।। १४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१६
अखण्डैकरसं क्षेत्रमखण्डैकरसा क्षमा ।। १५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१७

वे अखण्ड एकरस गोपनीय (दुर्ज्ञेय), वे ही अखण्ड एकरस शशी। वे ही अखण्ड एकरस क्षेत्र, एवं वे ही अखण्ड एकरस क्षमा (पृथ्वी) हैं।। १४,१५

अखण्डैकरसास्तारा अखण्डैकरसो रविः ।। १६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१७
अखण्डैकरसो ज्ञाता ह्यखण्डैकरसा स्थितिः ।। १७
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१२

वे ही अखण्ड एकरस तारागण, वे ही अखण्ड एकरस सूर्य, वे ही अखण्ड एकरस ज्ञाता एवं वे ही अखण्ड एकरस स्थिति स्वरूप हैं।। १६,१७

अखण्डैकरसा माता अखण्डैकरसः पिता ।। १८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१३
अखण्डैकरसो राजा ह्यखण्डैकरसं पुरम् ।। १९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/१९
अखण्डैकरसं तारमखण्डैकरसो जपः ।। २०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२०

वे ही अखण्ड एकरस माता, वे ही अखण्ड एकरस पिता, वे ही अखण्ड एकरस राजा एवं वे ही अखण्ड एकरस पुर स्वरूप हैं। वे ही अखण्ड एकरस प्रणव मंत्र एवं वे ही अखण्ड एकरस जप स्वरूप हैं।। १८,१९,२०

सर्ववर्जित चिन्मात्रं त्वत्ता मत्ता च चिन्मयम् ।। २१
आदिरन्तश्च चिन्मात्रं गुरुशिष्यादि चिन्मयम् ।। २२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३१

वे सर्ववर्जित चित्त स्वरूप मात्र, वे तत्पदवाच्य एवं अहं पदवाच्य चिन्मय हैं। वे आदि एवं अंत में चिन्मय एवं वे ही गुरु–शिष्य आदि चैतन्य स्वरूप हैं।। २१,२२

दृग्दृश्यं यदि चिन्मात्रमस्ति चेच्चिन्मयं सदा ।। २३
सर्वाश्चर्यं हि चिन्मात्रं देहं चिन्मात्रमेव हि ।। २४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३१–३२

दृश्य एवं द्रष्टा समस्त के चिन्मय होने पर ही ब्रह्म सदा चिन्मय स्वरूप में विराजमान हैं। वे ही समस्त अद्भुत रस एवं चिन्मय स्वरूप हैं, देह भी चिन्मय है।। २३,२४

अहं त्वं चैव चिन्मात्रं मूर्तामूर्तादि चिन्मयम् ।। २५
पुण्यं पापं च चिन्मात्रं जीवश्चिन्मात्रविग्रहः ।। २६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३३

मैं एवं तुम उसी चिन्मय ब्रह्मस्वरूप, समस्त मूर्त व अमूर्त पदार्थ भी चिन्मय हैं। पुण्य एवं पाप भी चिन्मय हैं। जीव भी चिन्मय की मूर्ति है क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है।। २५,२६

देहत्रयविहीनत्वात्कालत्रयविवर्जनात् ।। २७
जीवत्रयगुणाभावात्तापत्रयविवर्जनात् ।। २८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१७–१८

ब्रह्म स्थूल सूक्ष्म एवं कारण इन तीनों शरीरों से रहित भूत, भविष्य एवं वर्तमान इन तीनों कालों से अतीत है। ब्रह्म जीव भाव एवं सत्व, रज व तमः इन तीन गुणों से रहित ब्रह्म अधिद्वैविक, आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक एवं इन तीनों तापों से वर्जित है।। २७,२८

लोकत्रयविहीनत्वात्सर्वमात्मेति शासनात् ।। २९
चित्ताभावाच्चिन्तनीयं देहाभावाज्जरा न च ।। ३०
पादाभावाद्गतिर्नास्ति हस्ताभावात्क्रिया न च ।। ३१
मृत्युनास्ति जननाभावाद्बुद्ध्यभावात्सुखादिकम् ।। ३२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१७–१८

ब्रह्म भूः भूवः स्वः इन तीन लोकों से रहित, 'सब कुछ ब्रह्म है' यही श्रुति का उपदेश है। उस ब्रह्म में चित्त के अभाव वश कुछ भी चिंतनीय वस्तु नहीं है एवं देह के अभाव वश जरा भी नहीं है। उन्हें पैर के अभाव वश

गति नहीं एवं हाथ का अभाव होने से क्रिया भी नहीं। जन्म के अभाव वश मृत्यु भी नहीं है एवं बुद्धि के अभाव वश बुद्धिगम्य सुख आदि भी नहीं है।। २९,३०,३१,३२

इति एकादशं प्रकरणं समाप्तम् ।।

सार्धान्तिकपुंलिंगस्वरूपवाक्यानि ।। १२

इस प्रकरण में ब्रह्म के पुंलिंग स्वरूप के समस्त लक्षण उद्धृत हैं।

स एषोऽकलोऽमृतो ।। १

– प्रश्नोपनिषत्, ६/५

जो चिद्धातु, वे षोड़श कला रहित एवं अमृत स्वरूप हैं।। १

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं
न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।।
अदृष्टमव्यवहार्य मग्राह्य मलक्षण मचिन्त्य मव्यप
देश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं
शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते
स आत्मा स विज्ञेयः ।। २

– माण्डूक्योपनिषत, ७

विवेकीगण ओंकार की चतुर्थ अवस्था को इस प्रकार निर्देशित करते हैं कि उस समय ब्रह्म अंतःप्रज्ञ तेजस नहीं होते, बहिप्रज्ञ विश्व नहीं, जागृत एवं स्वप्न के मध्यवर्ती ज्ञान संपन्न नहीं, प्रज्ञानघन प्राज्ञ नहीं, ज्ञाता नहीं, अप्रज्ञ भी नहीं, लेकिन वे अदृश्य (नेत्र आदि इंद्रियों से अगोचर), वे अव्यवहार्य (यह अमुक है, इत्याकार व्यवहार के अयोग्य), वे कर्मेन्द्रियों के अग्राह्य (अनुमान योग्य), वे समस्त प्रकार के चिन्हों से रहित मानस चिन्ता के अविषय, शब्द निर्देश के अयोग्य, 'एक ही आत्मा' आदि आकार प्रतीतिगम्य, जागृत आदि प्रपञ्चों के निवृत्तिस्थान, वे शांत (निर्विकार), मंगलमय एवं अद्वैत, वे ही सर्वभूतान्तरात्मा एवं वे ही एकमात्र ज्ञातव्य विषय हैं।। २

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैतः ।। ३

– माण्डूक्योपनिषत, १२

ब्रह्म मात्रा शून्य, अव्यवहार्य, जगत प्रपञ्च के निवृत्ति स्थान मंगलमय ओंकार के चतुर्थ स्थानीय एवं अद्वैत स्वरूप हैं।। ३

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा ।। ४

– छान्दोग्योपनिषत्, ७/२४/१

ब्रह्मवित् वरीयान जिस स्वरूप में किसी रूपजात का दर्शन नहीं करते, कोई

शब्द जांत श्रवण नहीं करते, सदसत् वस्तु को ज्ञात नहीं होते, उन्हें भूमा स्वरूप या ब्रह्म कहते हैं अथवा महतस्वरुप का अन्य दर्शन नहीं है, अन्य श्रवण नहीं, अन्य विज्ञान नहीं, अर्थात् जो किसी प्रकार भेद व्यवहार के उपयुक्त नहीं है, वही स्वरूप भूमा अर्थात ब्रह्म है।। ४

स एष नेति नेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यतेऽ
शीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽ
सितो न व्यथते न रिष्यति ।। ५

– बृहदारण्यकोपनिषत्, ३/९/२६

ब्रह्म में समस्त पदार्थ का निषेध कर एकमात्र ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं। वह आत्मा अग्राह्य है क्योंकि उसे कोई ग्रहण नहीं कर सकता है, वे अशीर्य अर्थात शीर्ण नहीं होते, वे अमूर्त हैं इसलिए असंक (किसी विषय में लिप्त नहीं होते हैं)। वे बंधन रहित हैं इसलिए असित (बन्धन वर्जित) हैं, वे किसी भी तरह से व्यथित नहीं होते हैं या किसी रूप में विनष्ट नहीं होते हैं।। ५

रसघन एवैवं वाहरेयमात्मानन्तरोहवाहऽ
कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव ।। ६

हे मैत्रेयी, यह आत्मा सच्चिदानन्दरसघन, वे अनन्तर एवं अवाह्य हैं। उनमें अंतर एवं वाह्ययोग वश विशेषता आ जाती है, इसीलिए उन्हें अनन्तर एवं अवाहा कहते हैं अर्थात् उनका अन्तर्वाह्य विभाग शून्य है, अतएव कृत्सन अर्थात संपूर्ण, क्योंकि उनमें स्वातिरिक्त वाह्यभ्यान्तर का अभाव (आत्मैवेदं सर्वं– सभी आत्ममय, यही रूप श्रुति है) है। वे सर्वज्ञ चिद्घन् स्वरूप (ज्ञानस्वरुप) हैं।। ६

तस्मान्मनो विलीने मनसि गते संकल्पे विकल्पे
दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः ओशक्त्यात्मकः
सर्वत्रावस्थितः स्वयंज्योतिः शुद्धो नित्यो
निरञ्जनः शांततमः प्रकाशयति।। ७

आत्मातिरिक्त मन है इस विभ्रम ज्ञान के कारण महा अनर्थ होता है ''नाविद्या नो माया परं ब्रह्मास्मीति स्मरणस्य मनो नही'' अविद्या नहीं, माया भी नहीं है, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा स्मरण करने वाले व्यक्ति का मन

भी नहीं होता है, इस श्रुति के अर्थज्ञान द्वारा विशुद्ध ज्ञानदृष्टि से मन लय प्राप्त करता है, तदनन्तर मन से उत्पन्न संकल्प व विकल्प व उससे पुण्यपाप भस्मीभूत होते हैं, अनन्तर जाग्रत आदि पञ्चदश कलाओं के ग्रासकारी सदाशिव तुरीय ओंकार स्वरूप में अवशिष्ट रहते हैं; उसके बाद वही ओंकार सर्वशक्तिमय, सर्वत्र व्याप्त, स्वयं ज्योति, शुद्ध, नित्य निरञ्जन (विशुद्ध) एवं तमोगुण रहित स्वप्रकाश ब्रह्मस्वरुप में प्रकाशित होता है।। ७

एष शुद्धः पुतः शून्यः शांतोहप्राणोह
निरात्मानन्तोहक्षयाः स्थिरः शाश्वतोह
–: स्वतंत्रः स्वे मह्मिन तिष्ठति ।। ८
मैत्रायन्युपनिषत्, २/४

यह परमात्मा स्वभावतः शुद्ध एवं पवित्र है, अन्तःकरण शून्य, कर्म व ज्ञानेन्द्रिय एकप्रञ्च प्राण रहित होने के कारण वे शांत हैं; स्वातिरिक्त मुख्य प्राण के अभाव वश वे अप्राण हैं, जीवरूप में अस्वतंत्र है इसीलिए वे अनीश हैं, अपरिच्छिन्न होने के कारण वे अनन्त हैं, षड्भाव विकार रहित हैं इसीलिए अक्षय हैं, सत्स्वरूप हैं इसीलिए स्थिर हैं, चिरंतन हैं इसीलिए वे शाश्वत (नित्य) हैं, देह आदि से रहित हैं इसीलिए वे अज हैं, एवं परमेश्वर का स्वरूप हैं इसीलिए स्वतंत्र हैं। वे सदा निर्विशेष स्वीय स्वरूप एवं महिमा में विराजमान हैं।। ८

चक्षुषो द्रष्टा श्रोत्रस्य द्रष्टा वाचो द्रष्टा मनसो द्रष्टा
बुद्धेर्द्रष्टा प्राणस्य द्रष्टा तमसो द्रष्टा
सर्वस्य द्रष्टा ततः सर्वस्मादस्मादन्यो विलक्षणः ।।

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, द्वितीय खण्ड

सद्घनोऽयं चिद्घन आनन्दघन एकरसोऽव्यवहार्यः ।। ९

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, आठवां खण्ड

वो परमात्मा सभी के साक्षी हैं इसीलिए चक्षुद्रष्टा हैं, श्रोत्रेन्द्रियों के द्रष्टा हैं, वागिन्द्रियों के द्रष्टा हैं, बुद्धि के द्रष्टा, पञ्चप्राण के द्रष्टा, अविद्या के द्रष्टा, एवं समस्त पदार्थ के ही द्रष्टा हैं; किन्तु वे समस्त पदार्थ से विलक्षण स्वरुप, सद्घन स्वरुप, चिद्घन स्वरुप एवं आनन्दघन स्वरुप व सदा

एकरस हैं। इनमें व्यवहार्य प्रपञ्च के अभाववश वे अव्यवहार्य हैं।।९

सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्ते
निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः ।। १०

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, नवम् खण्ड

वही ब्रह्म सत् स्वरुप, नित्य शुद्ध स्वरुप, ज्ञान एवं सत्य स्वरुप, मुक्त स्वभाव, निर्मल, सर्वव्यापक, द्वैत रहित, आमन्दस्वरुप परमात्मा एवं जीवात्मा स्वरुप व सदा एकरस है।।२०

अद्रष्टाहव्यवहार्यहपैल्पो नाहल्पः
साक्ष्यविशेषः सर्वज्ञोहनन्तोहभिन्नोह
द्वयो विदिताविदितात परः
अद्वैत परमानन्दो विभूनित्यो निष्कलंको निर्विकल्पो
निरञ्जनो निराख्यातः शुद्धो देव एको
नारायणो न द्वितीयोहस्ति कश्चित ।। ११

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत, प्रथम अध्याय

ब्रह्म इंद्रियों के अग्राह्य हैं (स्वातिरिक्त किसी के द्वारा द्रष्ट नहीं होते हैं) इसीलिए अदृष्ट हैं, व्यवहार्य प्रपञ्च रहित (इदं प्रत्यय के अगोचर हैं) हैं, इसीलिए अव्यवहार्य हैं, भक्त जनों के लिए अल्प स्थान हृदय आदि स्थान लभ्य है इसलिए अल्प हैं, भूमा (अपरिच्छिन्न या सर्वव्यापक) हैं इसीलिए अनल्प हैं, सर्वव्यापक होने के कारण सबके साक्षी हैं, वस्तुतः सबसे निर्विशेष होने के कारण अविशेष हैं, सब जानते हैं इसीलिए सर्वज्ञ हैं, परिच्छेद रहित होने के कारण अनन्त, जीवात्मा परमात्मा इत्याकार भेद रहित, द्वैत रहित, मूर्त एवं अमूर्त पदार्थ होने के कारण श्रेष्ठ अद्वैत, परमानन्द स्वरूप, विभू, नित्य निर्दोष, निर्विकल्प निरञ्जन, संज्ञा रहित एवं शुद्ध स्वरुप होने के कारण वे एक अद्वितीय नारायण स्वरूप हैं। उनके जैसा कोई दूसरा नहीं है।। ११

अचक्षुर्विश्वतश्चक्षुरकर्णो विश्वतःकर्णोऽपादो
विश्वतः पादोऽपाणिर्विश्वतः पाणिरहमशिरा
विश्वतः शिरा विद्यामत्रैकसंश्रयो विद्यारूपोः ।। १२

– भस्मजाबालोपनिषत्, द्वितीय अध्याय

ब्रह्म चक्षुरहित होने पर भी विराट रूप में सर्वत्र चक्षुष्मान हैं, श्रोत्रेन्द्रिय रहित होकर भी सर्वत्र श्रोत्रेन्द्रिययुक्त हैं, पाणि पाद मस्तक विहीन होकर भी हस्त पद शिरोयुक्त हैं, स्वातिरिक्त मान एवं मेय पदार्थ के अभाव वश वे विद्या के एकमात्र आश्रय एवं स्वयं ही विद्यास्वरुप हैं।। १२

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।। १३
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ।। १४

– मुण्डकोपनिषत्, २/१/२

वे अपनी महिमा से ही प्रकाशित हैं, मूर्ति वर्जित होने के कारण अमूर्त हैं; सर्वत्र परिपूर्ण होने के कारण पुरुष, सर्वव्याप्त प्रपञ्च से वाह्य एवं अभ्यान्तर में सदा वर्तमान, अजर एवं अमृत स्वरुप होने के कारण अज हैं। क्रियाज्ञानेच्छाशक्त्यात्मक प्राण एवं अन्तःकरण चतुष्टय के अभाव वश वे अप्राण एवं अमना, प्रकाश मात्र स्वरूप होने के कारण वे शुभ्र एवं प्राक आरोप्याधार अक्षय ईश्वर से पर अर्थात श्रेष्ठ हैं।। १३,१४

अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तूर्योविभुःस्मृतः ।। १५

– आगमप्रकरणम् (माण्डुक्योपनिषतकारिका), १०

विश्व विराट ईशादिभाव– सबमें द्वैत का भाव दिखने पर भी वही द्वैत भाव अपवादाधार ब्रह्म अद्वैत विभु एवं तुर्यदेव होने के कारण ख्यात होते हैं।। १५

अपूर्वोहनन्तरोहवाह्यो न परः प्रणवोहव्ययः ।। १६

– आगमप्रकरणम् (माण्डुकोपनिषतकारिका), २६

स्वतः अन्य कारण रहित होने की वजह से वे अपूर्व हैं, स्वतः कार्याभाव होने के कारण वे अनन्तर हैं, ब्रह्म भिन्न पदार्थ के अभाववश वे अवाह्य, स्वपर के अभाववश वे अनपर एवं नित्य होने के कारण अव्यय (प्रणव स्वरुप परमात्मा अवशिष्ट रहते हैं इसीलिए अव्यय हैं)।। १६

अमात्रोहनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ।। १७

– आगमप्रकरणम् (माण्डुकोपनिषतकारिका), २९

अकारादि मात्रा रहित हैं इसलिए वे अमात्र हैं, पराभिधानात्मक अनन्त मात्रा रूपी होने के कारण वे अनन्तमात्र हैं, वे अभिधाम अभिधेयरुप अशिव द्वैत

भाव रहित या उसी रूप के उपशमाधार होने के कारण शिव परमात्मस्वरुप हैं।। १७

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।। १८
– श्वेताश्वेतरोपनिषत्, ६/११

ईश्वरात्मरूप में अखिल कर्मों के फलदाता सर्वान्तर्यामी होने के कारण वे सकल भूतों के आश्रय हैं। सर्वव्यापक हैं, इसलिए साक्षी हैं, सबके चेता (ज्ञाता), अशेष एवं विशेष रहित होने के कारण वे केवल, एवं गुणत्रय के अभाववश वे निर्गुण हैं।। १८

सर्वसंकल्परहितः सर्वनादमयः शिवः ।। १९
सर्ववर्जितचिन्मात्रः सर्वानन्दमयः परः ।। २०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/२

मन रहित होने के कारण वे सर्व संकल्प रहित, प्रणवादि सर्वनादमय होने के कारण वस्तुतः सदाशिव हैं। वे सर्व अचित् वर्जित चित्तस्वरुप एवं सर्वानन्दमय परमात्मा हैं।। १९,२०

सर्वानुभवनिर्मुक्तः सर्वध्यानविवर्जितः ।। २१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/३
आत्मानात्मविवेकादिभेदाभेदविवर्जितः ।। २२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/४

वही परमात्मा अन्तःकरणरूप अविद्याकल्पित जगज्जीवेश आदि अनुभव वर्जित एवं देह आदि साक्ष्यान्त- रहित है। वे आत्मा एवं अनात्मा के विवेक आदि के लिए भेद एवं अभेदज्ञान वर्जित हैं।। २१, २२

महावाक्यार्थतो दूरो ब्रह्मास्मीत्यतिदूरतः ।। २३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/५
तचछब्दवर्ज्यस्त्वंशब्दहीनो वाक्यार्थवर्जितः ।। २४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/६

महावाक्यार्थवृत्ति होने की वजह से दूर एवं ब्रह्मास्मीति इस वृत्ति से भी दूर हैं। वे 'तत्वमसि' इस वाक्य के तत् शब्द वर्जित एवं त्वं शब्द हीन वाक्यार्थ रहित अर्थात् निर्विशेष हैं।। २३,२४

क्षराक्षरविहीनो यो नादान्तर्ज्योतिरेव सः ।। २५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/६

क्षर प्रपञ्च, उसके आधार अक्षर ईश्वर, इन दोनों भावों से विहीन वे ब्रह्म प्रणव (शब्द ब्रह्म) नादान्त विद्योतमान तुर्य ज्योतिःस्वरूप हैं।। २५

अखण्डैकरसो वाऽहमानन्दोऽस्मीतिवर्जितः ।। २६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/७

मैं एकमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मस्वरुप हूँ, मैं आनन्द स्वरुप हूँ। यही (दृश्यप्रपञ्च) मायिक होने के कारण एतद्भाव वर्जित है। दृश्य घटादि, तद्विषयक ज्ञान दर्शन, इन दोनों भावों से वर्जित मैं केवल, निर्विशेष एवं अमलस्वभाव ब्रह्म हूँ।। २६,२७

नित्योदितो निराभासो द्रष्टा साक्षी चिदात्मकः ।। २८
– महोपनिषत्, ६/८०
स एव विदितादन्यस्तथैवाविदितादपि ।। २९
– पाशुपतब्रह्मोपनिषत्, १३

वे मात्रा रहित हैं इसलिए नित्य उदित हैं, उदयास्त रहित होने के कारण निराभास हैं। वे जीवरूप में व्यष्टि प्रपञ्च के दृष्टा, ईश्वर रूप के समष्टि प्रपञ्च के साक्षी हैं। स्वभावतः चिन्मय होने के कारण चिदात्मा हैं। वे ब्रह्मविदित अर्थात् ज्ञात स्थूल पदार्थ होने के कारण अन्य (पृथक) एवं वे ही ब्रह्म अविदित अर्थात् सूक्ष्म अविद्या बीज होने पर भी पृथक है।। २८, २९

इति द्वादशं प्रकरणं समाप्तम्।।

सार्धान्तिकस्त्रीलिंगस्वरुपवाक्यानि।। १३

इस प्रकरण में ब्रह्म के स्त्रीलिंग स्वरुप के समस्त लक्षण उक्त हैं।

अलौकिकपरमानन्दलक्षणाखण्डामिततेजोराशिः ।। १
— त्रिपादविभूतिमहानारायणौपनिषत्, प्रथम अध्याय

अलौकिक परमानन्दलक्षणा वह चिन्मयी, अखण्ड एवं मैं भी तेजोराशि रुपिणी एवं पुणोबोधात्मिका हूँ।। १

भावाभावकलाविनिर्म्मुक्ता (चिदविद्या) चिदाद्यैद्वितीय
ब्रह्मसंवित्तिः ।। २
— वहवृचोपनिषत्

श्रोत्रादि ग्राह्य शब्द आदि भाव कला एवं मन आदि 'ग्राह्य संकल्पादि अभाव कला' इन दोनों से विनिर्मुक्त चित्त रूपिणी एवं विद्यारूपिणी (चिदस्मीति वेदनीयत्वात् चिद्विद्या) मैं चिन्मयी इस ज्ञान के लिए चिद् विद्या, (बृंहणात्) व्यपनशील होने के कारण ब्रह्म हूँ, (ब्रह्मविद्वरिष्ठेः संवेदनीयत्वात्) वही चिन्मयी मा ब्रह्मवेतृ द्वारा संवेदनशील होने के कारण वह ब्रह्मसंवित्ती हैं।। २

सच्चिदानन्दलहरी महात्रिपुरसुन्दरी ।। ३
— बह्वृचोपनिषत्

वही चिन्मयी सचिदानन्द लहरी पूर्ण प्रवाहरूपिणी है। भूः, भवः एवं स्वः इन त्रिपुरोपलक्षित अनन्त ब्रह्माण्ड को अधिष्ठान कर जो शोभायुक्त होती हैं वही महात्रिपुरसुन्दरी हैं।। ३

बहिरन्तरनुप्रविश्य स्वयमेकैव विभाति ।। ४
— बहवृचोपनिषत्

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अन्तयामिनीरुप में अविष्ठिता होकर एवं उनके वाह्याभ्यन्तर में अनुप्रविष्ट होकर एकमात्र वही स्वयं विराजमान हैं।। ४

सर्वसंकल्परहिता सर्वसंज्ञाविवर्जिता ।। ५
सैषा चिदविनाशात्मा स्वात्मेत्यादिकृताभिधा ।। ६
— महोपनिषत्, ५/१००

अन्तःकरणवृत्ति के अभाव वश वे सर्व संकल्प वर्जित हैं एवं सर्वविध संज्ञा रहित हैं। वे चिन्मयी अविनाशरुपिणी आत्मा से भिन्न और कुछ भी नहीं है। वही आत्मा इत्यादि विभिन्न नाम युक्ता हैं।। ५,६

आकाशशतभागाच्छा ज्ञेषु निष्कलरुपिणी।। ७
— महोपनिषत्, ५/१०१

नास्तमेति न चोदेति नोत्तिष्ठति न तिष्ठति ।। ८
— महोपनिषत्, ५/१०२

वे आकाश की तुलना में सौ गुणा निर्मला चिन्मात्ररुपिणी हैं। ब्रह्मात्मविद् वरिष्ठ दृष्टि में वे प्राण आदि नामान्त षोड़शकलाओं से रहित होने की वजह से निङ्कलरुपिणी हैं। चित्त रूपिणी मा कलायुक्त होने के कारण उनके उदय एवं अस्त संभव हो सकते हैं, इसीलिए कहा गया है— निर्विशेष ब्रह्मरुपिणी चिन्मयी होने के कारण उनमें उदयास्तनयादि विकृति संभव नहीं हो सकता, क्योंकि वे मूर्त एवं अमूर्त होने की वजह से विलक्षणा अर्थात भिन्न स्वरुपा हैं।। ७,८

न च याति न चायाति न च नेह न चेह चित् ।। ९
सैषा चिदमलाकारा निर्विकल्पा निरास्पदा ।। १०
— महोपनिषत्, ५/१०२—१०३

वे सर्वव्यापिणी हैं इसीलिए उनका गमनागमन नहीं है, वे चिन्मयी से भिन्न और कुछ नहीं हैं। वही चिन्मयी मां जीव से भिन्न ब्रह्म स्वरुप में विमलाकार, संकल्प के अभाव वश निर्विकल्पा एवं स्वातिरिक्त अधिष्ठान के अभाव वश निरधिष्ठाना हैं।। ९,१०

महादिचदेकैवेहास्ति महासत्तेति चोच्यते ।। ११
निष्कलंका समा शुद्धा निरहंकाररुपिणी ।। १२
सकृद्विभाता विमला नित्यदयवती समा ।। १३
सा ब्रह्म परमात्मेति नामभिः परिगीयते ।। १४
— अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/५५—५६

एकमात्र वे ही महाचित्त रूपिणी एवं महासत्ता स्वरुपा उक्ता हैं। जो मां परम अद्वयस्वरुपिणी हैं, उनमें विशेषण विशिष्ट माया कलंक के अभाव वश वे निष्कलंका, अकिद्याकृत (वैषम्य) रहिता, एवं निरहंकाररूपिणी मा

नित्य विराजिता हैं, वे चिन्मयी होने के कारण विमला, स्वस्वरुप में नित्यदयावती एवं करुणामयी होने के कारण समदर्शिनी हैं। योगीगण उसी चित्त रूपिणी मां का ब्रह्म परमात्मा इत्यादि नाम द्वारा कीर्तन करते हैं।। ११,१२,१३,१४

इति त्रयोदशं प्रकरणं समाप्तम् ।।

सार्धान्तिकनपुंसकलिंगस्वरूपवाक्यानि।। १४

इस प्रकरण में ब्रह्म के नपुंसकलिंग स्वरुप के लक्षण उद्धृत हैं।

अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ।। १

— केनोपनिषत्, १/१/२

वह ब्रह्म स्थल प्रपञ्च से अलग अर्थात भिन्न एवं अविदित सूक्ष्म से भी भिन्न हैं।। १

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादं ।। २

— मुण्डकोपनिषत्, १/१/३

ब्रह्म निराकार एवं स्थूल देह आदि से विलक्षण होने के कारण अदृश्य, अग्राह्य, गोत्ररहित, ब्राह्मणादि वर्णरहित एवं ज्ञानकर्म्मेन्द्रिय वर्जित होने के कारण चक्षु, श्रोत्र, पाणि, पादादि इंद्रिय वर्जित है।। २

सदैव सोम्योदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।। ३

— छान्दोग्योपनिषत्, ६/२/१

हे सौम्य (प्रिय शिष्य) ! सृष्टि के पूर्व एकमात्र सत् स्वरुप, अद्वितीय स्वजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित एवं निर्विशेष ब्रह्म ही थे।। ३

अस्थूलमनन्बह्रस्वमदीर्घ मलोहित मस्नेहमच्छाय–
मतमोहवाष्वनाकाश मसंग मरसमगन्धमचक्षु–
ष्कमश्रोत्रमवागमनोहतेजस्कम प्राणममुख
ममात्रमनन्तरमवाह्यम् ।। ४

— बृहदारण्यकोपनिषत, ३/८/८

बुद्धि की तुलना में सूक्ष्म होने के कारण ब्रह्म अस्थूल, वृहत्त होने से अनणु, निष्परिमाण होने से अह्रस्व एवं अदीर्घ, रजः आदि तीनों गुणों के अभाव के कारण वह अलोहित, अद्रव होने से अस्नेह, अमूर्त होने से अच्छाय (छाया रहित), अविद्यक मोहाभाव वश वह अतमः, भूत भौतिक भावरहित होने से वह अवायु, अनाकाश, असंग, अगंध, ज्ञानकर्मेन्द्रिय के अभाव वश वह अचक्षु, अश्रोत्र, अवाक ; अन्तःकरण के अभाववश वह अमन, प्राणादि के अभाव वश वह अप्राण, अतेजस्क, निरवयव होने से

वह अमुख, अपरिच्छिन्न होने से वह अमात्र एवं अन्तर्वाह्यकल्पना रहित होने के कारण वे अनन्तर एवं अवाह्य हैं।।४

नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं
परिपूर्णमद्वयं सदानन्दचिन्मात्रं;
— नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, नवम खण्ड
पुरतः सुविभातमविभातमद्वैत
मचिन्त्यमलिंगं स्वप्रकाशमनान्दघनम् ।। ५

ब्रह्म नित्यस्वरुप, शुद्ध मुक्त स्वभाव, सुखस्वरुप परिपूर्ण, अद्वय सदानन्द स्वरुप एवं चैतन्य मात्र है। समस्त पदार्थों के पूरे भाग में स्वयं ही स्वप्रकाशमय होने एवं सूर्यादि द्वारा प्रकाशित नहीं हैं इसीलिए वह सुविभात एवं अविभात, द्वैतरहित होने के कारण अद्वय, अनिर्वचनीय होने से वह अचिन्त्य है, उनमें स्वगमक लिंग के अभाव वश वह अलिंग अर्थात् निर्विशेष, स्वप्रकाश एवं घनीभूत आनन्द स्वरुप हैं।। ५

एतद्वयशब्द मस्पर्श मरूप मरस मगन्ध मव्यक्त
मनादातव्य मगन्तव्य मविसर्जयितव्य मनानन्दयितव्यम मन्तव्य
मबोद्धव्य मनहंकर्तव्य मचेतयितव्य
मप्राणयितव्य मनपानयितव्य मव्यानयितव्य
मनुदानयितव्य मसमानयितव्य मनिन्द्रिय
मविषयमकरण मलक्षण मसङ्ग मगुण
मविक्रिय मव्यपदेश्य मसत्त्व मरजस्क
मतमस्क ममाय मप्यौपनिषदमेव.
सुविभातं सकृद्विभातं पुरतोऽस्मात
सर्वस्मात सुविभात मद्वयं ।। ६
— नृसिंहोत्तरतापनीयोनिषत्, नवम खण्ड

यहां प्रत्यगभिन्न (जीव से अभिन्न) ब्रह्मस्वरुप उद्धृत हुआ है। पञ्चतन्मात्र, ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों के विषय रहित होने से वे अशब्द, अस्पर्श, अरुप, अरस, अगन्ध, अव्यक्त, अदातव्य, अगन्तव्य, अविर्स्जयितव्य, अनानन्दयितव्य, अमन्तव्य, अबोद्धव्य, अनहंकर्तयितव्य, अचेतयितव्य, प्राण अपान समान ब्यान एवं उदान इन पञ्च प्राणों से रहित होने के कारण वे अप्राणयितव्य,

अपानयितव्य, अव्यानयितव्य, अनुदानयितव्य, असमानयितव्य, अन्तःकरणादि इंद्रिय रहित होने के कारण वह अनिन्द्रिय, इंद्रियों के विषयाभाव वश वह अविषय, इंद्रियरहित होने से वह अकरण, अनिर्देश्य होने के कारण अलक्षण, आसक्ति रहित होने के कारण वे असंग, सत्वादि गुणों से रहित होने के-कारण अगुण, विकार रहित, अव्यापदेश्य (वाङ्मन के अगोचर) सत्व रजः तमोगुण वर्जित होने के कारण वे माया रहित, अभय, वे ही एकमात्र उपनिषदप्रतिपाद्य, वे स्वप्रकाश, सदाप्रकाश, समस्त पदार्थों के पूरा भोग करने से सुप्रकाशित एकमात्र अद्वय ब्रह्म स्वरुप हैं।। ६

अनिर्वचनीयं ज्योतिः सर्वव्यापकं निरतिशयानन्दलक्षणं परमाकाशम् ।। ७
— मण्डलब्राह्मणोपनिषत्, चतुर्थ ब्राह्मण

वाक्य एवं मन के अगोचर ब्रह्म रूप में स्वयं प्रकाश होने की वजह से वे अनिर्वचनीय ज्योतिःस्वरुप, वे सर्व–व्यापक, वे भूमा होने के कारण निरतिशय आनन्द लक्षणयुक्त भूताकाश के कारण वे परमाकाश एवं चिदाकाश हैं।। ७

तदब्रह्म तापत्रयातीतं षटकोशविनिर्न्मुक्तं
षड्उन्मिवर्जितं पञ्चकोशातीतं षड़भाव
विकारशून्यमेवमादिसर्वविलक्षणं भवति।।
— मुदगलोपनिषत्,
निर्गुणं निरुपप्लवं ज्योतिरभ्यान्तरं सर्वमायातीत
मप्रत्यगेकरस मद्वितीयम् ।। ८

वह ब्रह्म स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह रहित होने से आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक इन तीन तापों से विनिर्मुक्त, वह त्वचा, रुधिर, मांस, मेद, मज्ञा एवं अस्थि इन छह कोशों से रहित, वह अशनाया, पिपासा, शोक, मोह, जरा, मरण इन छह प्रकार के (उर्म्मि) चित्तविकारों से वर्जित, वह अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय इन पञ्चकोशों से रहित, वह छह विकार (जायते, अस्ति, विपरिणमति, वर्द्धते, अपक्षीयते विनश्यति) रहित, इस प्रकार सर्व पदार्थ से विलक्षण (भिन्न), सत्वादि गुण

रहित होने की वजह से वह निर्गुण, स्थूलादि देहरहित होने की वजह से वह उपद्रवशून्य, अति प्रकाशमय होने के कारण वह अभ्यन्तर ज्योति, वह सर्वमयातीत, उनमें स्वातिरिक्त प्रत्यकरस के (जीव व जगतभाव) अभाव के कारण वह अप्रत्यक एकरस स्वरुप एवं द्वैत रहित होने के कारण वह अद्वितीय हैं।। ८।

तज्ञोतिरेकमद्वितीयं सर्वक्ल्पनातीतं
ध्रुव मक्षरमेकं सदा चकास्ति सच्चिदानन्दम्।। ९

वही ब्रह्म ज्योतिस्वरुप एकमात्र अद्वितीय है, वह निर्विशेष होने के कारण समस्त कल्पना के अतीत, सत् मात्र होने से वह निश्चल, अविनाशी, एवं एकमात्र वह ब्रह्म ही सदा प्रकाशित हैं।। ९

यत्तत् सत्यं विज्ञानमानन्दं निष्क्रियं निरञ्जनं
सर्वगतं सुसुक्ष्मं सर्वतोमुखमनिर्देश्यममृतं निष्क्लम् ।। १०
– महावाक्यरत्नावली, १४/११

वह ब्रह्म सत्य विज्ञान एवं आनन्द स्वरुप, निष्क्रिय, निर्मल, सर्वव्यापक सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, सर्वव्यापी, वाक्य व मन के अगोचर, अमृत स्वरुप एवं कला शून्य हैं।। १०

एकमद्वैतं निष्कलं निर्गुणं शान्तं
निरञ्जन मनामयं मद्वैतं चतुर्थ
ब्रह्मविष्णुरुद्रातीतमेकमाशास्यं ।। ११
– भस्मजाबालोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वह ब्रह्म एकमात्र, द्वैतरहित, निष्कल, निष्क्रिय, विकाररहित शांत स्वरुप, वह निरतिशय अनामय (रोग आदि उपद्रव रहित) अद्वितीय तुर्य स्वरुप, वह ब्रह्म निर्विशेष होने के कारण ब्रह्म विष्णु के रुद्रभाव शून्य, एकमात्र एवं सबसे आशास्य (एकमात्र वांछित) है।।११

(अव्यय) अन्वय मनाद्यन्तमशेष वेदवेदान्तवेद्यमनिर्देश्य
मनिरुक्तमप्रच्यवमाशास्यमद्वैतं (चतुर्थ)
सर्वाधार मनाधार मनिरीक्ष्यम ।। १२
– भस्मजाबालोपनिषत्, द्वितीय अध्याय

वह ब्रह्म अद्वय, उत्पत्ति प्रलय रहित होने के कारण अनादि, अनन्त, ब्रह्मा इंद्रादि रुप में एवं स्वीय (अपने) स्वरुप द्वारा वह अशेष, वह वेद एवं वेदान्त वेद्य, वह– निर्विशेष होने की वजह से अनिर्देश्य एवं अनिरुक्त (निर्देश एवं वचनातीत), अच्युत होने के कारण वह अप्रच्यव, वह आशास्य (एकमात्र वांछित) वह अद्वैत, वह ओंकार के तुरीय पदवाच्य, सबके आधार, उनका आधार कोई नहीं है इसीलिए वह अनाधार ब्रह्मामस्मीति इस भावना के व्यतिरेक से वह अनिरीक्षा अर्थात् अलक्ष्य हैं।। १२

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।। १३
– कठोपनिषत् १/३/१५
परं विज्ञानाद् यद् वरिष्ठं प्रजानां
यद्र्चिमद् यदणुभ्योहणु च ।। १४

वह ब्रह्म शब्द स्पर्श रुप रस एवं गन्ध वर्जित, नित्य एवं अव्यय स्वरुप है। तमोगुण विशिष्ट जीवों की अज्ञान दृष्टि के कारण स्वातिरिक्त वस्तु विषयक विज्ञान से वह श्रेष्ठ हैं, जो स्वयंप्रकाश होने के कारण सूर्यादि से भी ज्योतिर्मय, जो अणुस्वरुप बुद्धिवृत्ति से भी सूक्ष्म हैं, उन्हें ब्रह्म कहते हैं।। १३,१४

बृहच्च तद्दिव्य मचिन्त्यरूपं
सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मत्तरं विभाति ।। १५
– मुण्डकोपनिषत्, ३/१/७
एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यंहि किंचित् ।। १६
– श्वेताश्वतरोपनिषत्, १/१२

वे आकाश से भी वृहद हैं, अपनी महिमा से ही स्वप्रकाश वाक्य एवं मन के अगोचर होने की वजह से वह अचिन्तय स्वरुप हैं एवं वही सूक्ष्म होने से भी सूक्ष्मतर रूप में प्रतिभात होते हैं। प्रत्यागभिन्न ब्रह्मरूप में जो नित्य आत्मसंस्थान (निर्विशेष ब्रह्म ही मैं हूँ यह भाव) है, एकमात्र वही ज्ञेय है, उससे भिन्न कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है।। १५,१६

अघोषमव्यञ्जन मस्वरंच
अकण्ठताल्वोष्ठ मनासिकंच ॥ १७
अरेफजात मुभयोष्ठवर्जितं
यदक्षरं न क्षरते कदाचित् ॥ १८
– अमृतनादोपनिषत्, २५ ।

वही ब्रह्म परम अक्षर स्वरूप हैं। उनमें प्रयत्न विशेष के अभाव वश वे अघोष हैं, उनमें हल–संज्ञकवर्ण का अभाव वश वे अव्यञ्जन, स्वरवर्णरहित होने की वजह से वे अस्वर, एवं वे ही तालु, कण्ठ, ओष्ठ एवं अनुनासिक वर्ण रहित हैं। शषहादि प्रयत्नरहित होने की वजह से एवं रकारादि प्रत्याहार के अभाव की वजह से उनमें रेफ एवं उष्मवर्ण वर्जित हैं। उनके ब्रह्मक्षर (अवस्थान्तर) रहित होने की वजह से वे परम अक्षर स्वरुप अर्थात् ओष्ठ तालु आदि वर्णविकार उनमें नहीं है, वे निर्विशेष ब्रह्म स्वरुप हैं॥ १७,१८

अगोचरं मनोवाचामवधूतादिसंप्लवम् ॥ १९
सत्तामात्रप्रकाशैकप्रकाशं भावनातिगम् ॥ २०
– मैत्रेय्युपनिषत्, १/९

वे मन एवं वाक्य के अगोचर, वे अवधूतादि के (ब्रह्मसंस्थ सन्नासी) स्वातिरिक्त संसार सागर को पार करने के लिए नौका स्वरुप हैं। वे सत्तामात्र (सत् स्वरुप), 'मैं ही प्रत्यगभिन्न सत्ता मात्र ब्रह्म हूँ' इस बोध के प्रकाशक एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' इस भावना व्यातिरेक (बिना) उन्हें पाया नहीं जा सकता है॥ १९,२०

अहेयमनुपादेयमसामान्यविशेषणम् ॥ २१
ध्रुवं स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ॥ २२

वे हेयरूप त्रय गुण से रहित होने के कारण अहेय, उनमें उपादेय गुणसाम्यता के अभाव के कारण वे अनुपादेय, अमूर्त सामान्य भाव एवं मूर्तभाव विशेष रूप हैं, वे इन दोनों सामान्य एवं विशेष भाव से वर्जित हैं, कुटस्थ होने के कारण वे ध्रुव, निस्तरंग चित्त समुद्रस्वरुप होने के कारण वे स्तिमित गंभीर, वे भूतभौतिक तेज एवं तमो रहित हैं॥ २१,२२

निष्फलं निर्म्मलं शांतं सर्वातीतं निरामयम् ॥ २३

न शून्य नापि चाकारो न दृश्यं नापि दर्शनम् ॥ २४
– महोपनिषत् २/६६
चिन्मात्रं चैत्यरहितमनन्तमजरं शिवम् ॥ २५
– महोपनिषत् २/६८
चैतन्यानुपातरहितं सामान्यन च सर्वगम् ॥ २६

वे निष्फल, निर्मल, प्रपञ्च रहित, शांत स्वरुप सभी से अतिक्रम कर स्थित होने के कारण से सर्वातीत एवं निरुपद्रव हैं। उनमें अविद्यारुप बीज नहीं होने के कारण वे शून्य नहीं हैं, लेकिन स्वस्वरुप में सदा वर्तमान अविद्या कल्पित नामरुप प्रपञ्चरहित होने की वजह से वे आकार युक्त भी नहीं हैं, वे विषय (दृश्य) एवं विषयी (ज्ञान) रहित होने की वजह से दृश्य भी नहीं हैं, दर्शन भी नहीं हैं। वे चिन्मात्र स्वरुप, वे चित्तजात वृत्तिशून्य, वे अनन्त, अजर एवं मंगलमय शिवात्मक हैं। वे चित्त संबंध रहित, वे निज सत्ता द्वारा सामान्य भाव में सर्वव्यापक हैं॥ २३, २४, २५, २६

अनामय मनाभास मनामक मकारणम् ॥ २७
– महोपनिषत् ५/४५
मनोवचोभिरग्राह्यं पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम् ॥ २८
– महोपनिषत् ५/४५
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिवर्जितं तदिदं पदम् ॥ २९
– महोपनिषत् ५/४८
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ ३०
– योगशिखोपनिषत् २/१७

वे अनामय, स्वातिरिक्त आभासरहित होने की वजह से अनाभास स्वरुप, नामादि रहित एवं कारण वर्जित हैं। वे मन एवं वाक्यों के अगोचर (अग्राह्य), पूर्ण स्वभाव आकाश से भी पूर्ण, वे सुख से भी अधिक अतिशय सुखस्वरूप हैं। दृश्य एवं दर्शन रहित, जो पद ज्ञान ज्ञेय व ज्ञाता इस त्रिपुटी से वर्जित, ईदंपदवाच्य ब्रह्म वही हैं। वही शुद्ध स्वरुप, सूक्ष्म, निराकार, निर्विकार एवं निरञ्जन हैं॥ २७,२८,२९,३०

अप्रमाण मनिर्देश्य मप्रमेय मतीन्द्रियम ॥ ३१
– योगशिखोपनिषत् ३/१८

निर्लेपकं निरापायं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।। ३२
— योगशिखोपनिषत् ३/२१
सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्द घनमव्ययम् ।। ३३
प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् ।। ३४
— अध्यात्मोपनिषत् ६१

वे प्रमाण के अतीत, अनिर्देश्य, अप्रमेय स्वरुप एवं अतीन्द्रिय हैं। वे निर्लेपक, अपायरहित, वे कूटस्थ अचल एवं ध्रुव हैं। 'वे ब्रह्म घनीभूत सत्स्वरुप, घनीभूत चित्तस्वरुप एवं घनीभूत चित्तस्वरुप एवं घनीभूत नित्य आनन्द स्वरुप हैं। वे अव्यय, प्रत्यगभिन्न एकरस, पूर्णस्वरुप, एवं विश्वव्यापी हैं।।' ३१,३२,३३,३४

अहेयमनुपादेयमनाधेय मनाश्रयम् ।। ३५
— अध्यात्मोपनिषत्, ६२
शुद्धं बुद्धं सदा मुक्त मनामक मरूपकम् ।। ३६
— तेजोबिन्दूपनिषत् ६/७०

वे हेय एवं उपादेय वर्जित, वे किसी को देय नहीं हैं इसीलिए अनादेय एवं स्वातिरिक्त आश्रय रहित होने के कारण वे अनाश्रय स्वरुप हैं। वे शुद्ध, बुद्ध एवं सदा मुक्त स्वभाव, नाम एवं रूप वर्जित हैं।। ३५,३६

संकल्प संक्षयवशाद् गलिते तु चित्ते
संसारमोहमिहिका गलिता भवन्ति ।। ३७
स्वच्छं विभाति शरदीव खमागतायां
चिन्मात्रमेकमजमाद्यमनन्तमन्तः ।। ३८
— महोपनिषत्, ५/५३

संकल्प क्षय होने के कारण जब चित्त वृत्तिशून्य होता है, तभी संसार रूप मोहकुन्ज्वटिका दूर होती है। शरत् कालीन आकाश जिस तरह से निर्मल भाव धारण करता है, उसी प्रकार से चित्त वृत्तिशून्य होने पर वे निर्विशेष शुद्ध चिन्मात्र स्वरुप में प्रतिभात होते हैं। वे चित्तस्वरुप, एक, अज एवं आदि व अन्त रहित हैं।। ३७,३८

इति चतुर्दशं प्रकरणं समाप्तम् ।।

सार्धान्तिकात्मस्वरूपवाक्यानि।। १५

इस प्रकरण में ब्रह्म के स्वरुप समस्त वाक्य उद्धृत किए गए हैं।

आकाशो वै नाम नामरूपयो —
र्निर्वहिता ते यदन्तरा तदब्रह्म तदमृतं स आत्मा ।। १
— छान्दोग्योपनिषत् ८/१४/१

जो (आ समन्तात काश में) सर्वत्र दीप्तिमान है, वही, आकाश परब्रह्म, वही चिद्धातु, वही जगदाधर होने की वजह से जगद्वीजभूत नाम एवं रूप के निष्पादक हैं।। १

इदम् सर्व यदयमात्मा ।। २
— बृहदारण्यकोपनिषत्, २/४/६
चिदेकरसो ह्यथायमा ।। ३
— नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, प्रथम खण्ड,
आतो ह्ययमात्मा ।। ४
अनुज्ञाता ह्ययमात्मा ।। ५
— नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, आठवां खण्ड,

मिथ्याज्ञान विकल्पित इस परिदृश्यमान जगत में चिदेकरस आत्मस्वरुप ही अर्थात् ब्रह्म प्रपञ्चकार से प्रतिभात हो रहे हैं, वे ही अनुज्ञाता अर्थात् चैतन्य स्वरुप, एकरस एवं आत्मस्वरुप हैं।।

अनुज्ञैक्रसो ह्ययमात्मा ।। ६
— नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, आठवां खण्ड,
अविकल्पो ह्ययमात्मा ।। ७
— नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, द्वितीय खण्ड,
देहादेः परतरत्वाद् ब्रह्मैव परमात्मा ।। ८
—निरालम्बोपनिषत्

वे ही तैजस एवं सूत्रात्मा ऐक्य ज्ञान प्रदान करते हैं, इसीलिए अनुज्ञा (अनुज्ञाता) हैं, वे एकरस एवं आत्मस्वरूप हैं। वे ही आत्मा विकल्परहित है। देह आदि ब्रह्माण्ड से श्रेष्ठतर होने की वजह से वे परमात्मा एव वृहत् होने की वजह से वे ब्रह्मरुप में उक्त हैं।।६,७,८

अखण्डैकरसो ह्यात्मा ।। ९

– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/६

निर्गुणः साक्षीभूतो निष्क्रियो निरवयर आत्मा।। १०

– महाकाव्यरत्नावली, १५

वह आत्मा अखण्ड एवं एकरस है। आत्मा सत्वादिगुण रहित सर्वान्तर्यामी होने के कारण से सबकी साक्षी, देह आदि से रहित होने के कारण निष्क्रिय एवं निरवयव है।। ९,१०

विरजः पर आकाशादज आत्मा महान्ध्रुवः ।। ११

– बृहदारण्यको पनिषत्, ४/४/२०

वे आत्मा रजः आदि गुणरहित होने के कारण बिरजा अर्थात् स्वच्छ, निरवयव होने के कारण आकाश की तुलना में श्रेष्ठ, वे अज एवं अपरिच्छिन्न होने के कारण महान ध्रुव है।। ११

एको देवः सर्वभूतेषु गुढ़ः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।। १२

– श्वेताश्वतरोपनिषत्, ६/११

वे एक अद्वितीय देवता सकल भूत में गूढ़रूप में (अदृश्यरूप में) स्थित हैं, वे सर्वव्यापी एवं सभी भूतों की अंतरात्मा हैं।। १२

निःशब्दं तत्परं ब्रह्म परमात्मा समीर्यते ।। १३

– नादाबिन्दूपनिषत्, ४८

सक्ले निष्क्ले भावे सर्वात्रात्मा व्यवस्थितः ।।१४

– ध्यानबिन्दूपनिषत्, ८

शब्दगुण आकाश से विलक्षण होने के कारण वे निःशब्द, परम ब्रह्म एवं परमात्मा के नाम से जाने जाते हैं। नामरुपादि षोड़श कला युक्त एवं कला रहित समस्त भावों में आत्मा विराजमान है।। १३,१४

सर्वदा सर्वकृत् सर्वः परमात्मेत्युदहृतः ।। १५
अनाद्यान्तावभासात्मा परमात्मैव विद्यते।। १६

– अन्नपूर्णोपनिषत्, २/३४

वे अज्ञान दृष्टि में सर्वकर्त्ता के रूप में दृष्ट हैं एवं ज्ञानदृष्टि में सर्वमय परमात्मा कहे जाते हैं। ऐहिक अर्थात् संसार दशा में भी एकमात्र

परमात्मा ही आदि, मध्य एवं अन्डशून्य प्रकाश मात्र रूप में विद्यमान है।।

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कुटस्थो दोषवर्जितः ।। १७

– जाबालदर्शनोपनिषत्, १०/२

तत्परः परमात्मा च श्रीरामः परुषोत्तमः ।। १८

– तारसारोपनिषत, २/४

सर्वकारण्कार्यात्मा कार्यकारण वर्जितः ।। १९

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१

सर्वातीतस्वभावात्मा नादान्तर्ज्योतिरेव सः ।। २०

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/७

वही आत्मा नित्य, सर्वगत, कूटस्थ (निर्विकार) एवं निर्मल है। वह आत्मा परमात्मा, श्रीराम एवं पुरुषोत्तम के नाम से भी उक्त है। (स्वात्मातिरिक्ताश्रयापह्नवसिद्धश्रीः मुक्तिः श्रीरुपेण यो राजमनो महीयते स श्रीरामः) स्वातिरिक्त आश्रयराहित्य सिद्ध मुक्ति को श्री कहते हैं, जो उसी मुक्तिस्वरुपा श्रीरुप में विराजमान हैं, उन्हें ही श्रीराम कहते हैं।) वही आत्मा अज्ञानदृष्टि में सर्वकार्या एवं कारणरुप में प्रकाशित होने पर भी ज्ञानदृष्टि से स्वयं कार्य एवं कारण रहित है। वह परमार्थ दृष्टि से सबके अतीत एवं तुर्यात्मक जो अन्तज्योति, वह वही हैं। वह तुरीयावस्था के भी अतीत हैं।। १७,१८,१९,२०

निर्विकल्पस्वरूपात्मा सविकल्पविवर्जितः ।। २१

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/७५

सदा समाधिशून्यात्मा आदिमध्यान्तवर्जितः ।। २२

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/७६

प्रज्ञानवाक्यहीनात्मा अहंब्रह्मास्मिवर्जितः ।। २३
तत्त्वमस्यादिहीनात्मा अयमात्मेत्यभावकः ।। २४

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/७७

वे सविकल्प प्रपञ्च रहित होने की वजह से निर्विकल्पस्वरूप, वाह्य एवं अभ्यान्तरिक विक्षेपरहित होने के कारण सदा समाधि शून्य हैं, उनका आदि, मध्य या अन्त भी नहीं है, वे वाक्य के अगोचर होने के कारण 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्यबोधगम्यरहित केवलमात्र प्रज्ञान स्वरुप हैं। वे

वाक्य से अतीत होने के कारण 'तत्वमस्यादि' वाक्य प्रतिपाद्य विहीन एवं 'अयमात्मा' इत्यादि वाक्यरहित हैं।। २१,२२,२३,२४

ओंकारवाच्यहीनात्म सर्ववाच्यविवर्जितः ।। २५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/७८
सर्वत्र पूर्णरूपात्मा सर्वत्रात्मावशेषकः ।। २६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/५
शुद्धचैतन्यरूपात्मा सर्वसङ्गविवर्जितः ।। २७
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/६
आनन्दात्मा प्रियो ह्यात्मा मोक्षात्मा बन्धवर्जितः।। २८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/३६

वे वाक्य के अतीत हैं इसीलिए ओंकारवाच्य विश्वविराट ईशादि भाव रहित हैं, वे शांत एवं शिवस्वरुप होने के कारण सर्ववाच्य के अतीत हैं। वे सर्वत्र पूर्णरूप में विराजमान एवं सर्वत्र आत्मस्वरूप में नित्य सिद्ध होने के कारण वे अणिमादि सभी सिद्धियों से रहित हैं। वे आनन्दस्वरुप, प्रिय एवं बन्धरहित मोक्षस्वरुप हैं।। २५,२६,२७,२८

शून्यात्मा सूक्ष्मरूपात्मा विश्वात्मा विश्वहीनकः ।। २९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/४३
सत्तामात्रस्वरूपात्मा नान्यत्किंचिज्जगद्भयम् ।। ३०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/४५
अपरिच्छिन्नरूपात्मा अणुस्थूलादिवर्जितः ।। ३१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/४८
नामरूपविहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः ।। ३२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/४९
साक्ष्यसाक्षित्वहीनात्मा किंचित्किंचिन्न किंचन ।। ३३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/५१
मुक्तामुक्तस्वरूपात्मा मुक्तामुक्तविवर्जितः ।। ३४
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/६५

स्वातिरिक्त प्रपञ्च रहित होने के कारण वे शून्यात्मा, सर्वव्यापक होने के कारण सूक्ष्मस्वरूप विश्वात्मा, लेकिन प्रपञ्चरहित होने के कारण वे

विश्वरहित हैं। स्वातिरिक्त प्रपञ्च के अभाव वश वे सत्स्वरुप हैं, उनमें भय के अभाव वश वे सत्स्वरुप, उनमें भय के लिए कुछ भी नहीं है। वे परिच्छेद रहित हैं। अणु एवं स्थूलभाव वर्जित हैं। वे नाम एवं रुपविहीन परमज्ञान स्वरुप एवं आनन्द स्वरुप हैं। उनके प्रतियोगी रहित निर्विशेष होने के कारण साक्षी एवं असाक्षी इन दोनों भावों से रहित इस ब्रह्म के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है। वे परमार्थदृष्टि में मुक्त एवं समुक्तभाव रहित एवं मुक्त व अमुक्त स्वरुप अर्थात् निर्विशेष है।। २९,३०,३१,३२,३३,३४

द्वैताद्वैतस्वरूपात्मा द्वैताद्वैतविवर्जितः ।। ३५
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/६६
निष्कलात्मा निर्मलात्मा बुद्धात्मा पुरुषात्मकः ।। ३६
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/६८
आत्मेतिशब्दहीनो य आत्मशब्दार्थवर्जितः ।। ३७
सच्चिदानन्दहीनो य एषैवात्मा सनातनः ।। ३८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१०
यस्य किंचिद्बहिर्नास्ति किंचिदन्तः कियन्न च।। ३९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१०
यस्य लिङ्ग प्रपञ्चं वा ब्रह्मेवात्मा न संशयः ।। ४०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ५/१०

वे परमार्थ दृष्टि से द्वैत एवं अद्वैत भावरहित, द्वैत एवं अद्वैत स्वरुप हैं, वे निष्फल, निर्मल, बुद्धि की भी आत्मा एवं पुराण पुरुष स्वरूप हैं। वे परमार्थ दृष्टि से निर्विशेष होने की वजह से सच्चिदानन्दपद वाच्यरहित सनातन आत्मा है। जिनकी वाह्य व आभ्यान्तरिक भावना एवं अज्ञानदृष्टि से यह दृश्य प्रपञ्च जिनके लिंगस्वरुप जुड़ता है, वे ब्रह्म ही परमार्थ दृष्टि से जगत एवं जीवरुप में विवर्तित हाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।। ३५,३६,३७,३८,३९

इति पञ्चदशं प्रकरणं समाप्तम

सार्धान्तिकसर्वस्वरुपवाक्यानि।।१६

इस प्रकरण में ब्रह्म के सर्वस्वरूप से संबंधित समस्त वाक्य उद्धृत हुए हैं।

ओंकार एवेदं सर्वम् ।। १

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, ४/१

इस परिदृश्यमान इदंपदवाच्य अभिधान एवं अभिधेय रूप अविद्या एवं उसवे समस्त प्रपञ्च ही ओंकार पदवाच्य परब्रह्म हैं।। १

स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात
स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः
स एवेदं सर्वम् ।। २

– छान्दोग्योपनिषत् ७/२५/१

तत्पदवाच्य वह ब्रह्म अधः, उपरी, पश्चात्, पुरोभाग में एवं दक्षिण व उत्तर में सर्वत्र विराजमान है।। २

अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं
पुरस्तादहं दक्षिणतोहऽमुत्तरतोह
हमेवेदं सर्वम् ।। ३ – छान्दोग्योपनिषत्, ७/२५/१

अहं पदवाच्य ब्रह्म अधः, उपरी, पश्चात, पुरोभाग दक्षिण एवं उत्तर सर्वत्र व्याप्त है। सोऽहम् शब्द द्वारा प्रत्यगभिन्न (जीवाभिन्न) ब्रह्म ही उक्त होते हैं।। ३

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा
पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वम् ।। ४

– छान्दोग्योपनिषत्, ७/२५/२

वह आत्मा प्रत्येक पर रूप में अभिन्न होकर अधः, उपरी, पश्चात, पुरोभाग दक्षिण एवं उत्तर सर्वत्र विराजमान है।। ४

आत्मैव वेदममृतविदं ब्रह्मेदं सर्वम् ।। ५

यह समस्त ब्रह्माण्ड अमृत आत्मस्वरुप है।।५

एतद्ब्रह्मैतत् सर्वम् ।। ६

-- बृहदारण्यकोपनिषत्, ५/३/१

नारायण एवेदं सर्वम् ।। ७

– नारायणपूर्वतापिन्युपनिषत्, सप्तम खण्ड

सच्चिदानन्दरुपमिदं सर्वम् ।।८

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपिन्योपनिषत्, सप्तम खण्ड

सत्तामात्रं हीदं सर्वं मत्सवरुपमेवेदं सर्वम् ।। ९

समस्त परिदृश्यमान ब्रह्म है, (नरात आविर्भूत नारं जगत् तदप वादाधारः नारायणः) नारायण ही इस जगत के आधार स्तूप हैं। इस परिदृश्यमान जगत सच्चिदानन्द स्वरुप ब्रह्ममय सत् ब्रह्म ही इस जगत रूप में प्रतिभात हो रहे हैं। ६,७,८,९

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।। १०

– कैवल्योपनिषत्, १/९

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ।। ११

– अध्यात्मोपनिषत्, २०

वही सर्वमय, कालत्रय स्वरुप एवं सनातन हैं। वही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र एवं शिव रूप में विराजमान हैं।

स्वयं विश्वमिदं सर्वं स्वस्मादन्यन्न किंचन ।। १२

– अध्यात्मोपनिषत्, २०

मरुभूमौ जलं सर्वं मरुभूमात्रमेव तत् ।। १३
जगत्रयमिदं सर्वं चिन्मात्रं स्वविचारतः ।। १४

– महोपनिषत्, ४/८४

भववर्जितचिन्मात्रं सर्वं चिन्मात्रमेव ही ।। १५

– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२५

वे स्वयं ब्रह्म स्वरुप में प्रतिभात होते हैं, ब्रह्मातिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं, जैसे मरुभूमि में वास्तविकता पानी नहीं, केवल मरुभूमि मात्र है, इसी तरह विचार दृष्टि से त्रिजगदादि समस्त प्रपञ्च चिन्मात्र एवं जन्मवर्जित है।। १२,१३,१४,१५

यत्किंचिद्यन्न किंचिच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि।। १३

– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२७

अखण्डैकरसं सर्वं यद्यच्चिन्मात्रमेव हि।। १७
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२८
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं चिन्मात्रमेव हि।। १८
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२८
ज्ञाता चिन्मात्ररूपश्च सर्वं चिन्मयमेव हि।। १९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/२९

अन्य जो कुछ भी दिखता है, वह सब चिन्मात्रस्वरुप ही है। समस्त जगत अखण्ड एवं एकरस ब्रह्म है। भूत, भविष्य एवं वर्तमानस्वरुप समस्त काल एवं ज्ञातृत्वभाव सभी चिन्मात्र ब्रह्म, क्योंकि सब कुछ ब्रह्ममय है।। १६,१७,१८,१९

यच्च यावच्च भूतादि यच्च यावच्च लक्ष्यते ।। २०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३९
चिन्मात्रान्नास्ति लक्ष्यं च सर्वं चिन्मात्रमेव हि ।। २१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/४१

समस्त दूरस्थ पदार्थ चिन्मय ब्रह्मस्वरुप हैं। चिन्मय ब्रह्म से अलग अन्य कोई लक्ष्य नहीं है, क्योंकि सब कुछ ब्रह्मात्मक है।। २०,२१

आत्मनोऽन्या गतिर्नास्ति सर्वमात्ममय जगत् ।। २२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/४६
आत्मनोऽन्यत्तुषं नास्ति सर्वमात्ममयं जगत ।। २३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/४७

परमात्मा से भिन्न अन्य गति नहीं है एवं ब्रह्मातिरिक्त अन्य कोई तुष्टि नहीं है क्योंकि पूरा जगत ब्रह्ममय है।। २२,२३

सर्वमात्मैव शुद्धात्मा सर्वं चिन्मात्रमद्वयम् ।। २४
– महोपनिषत्, ६/३९
सर्वञ्च खलिब्दं ब्रह्म नित्यचिद्घनमक्षतम् ।। २५
–महोपनिषत्, ५/११९
समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मेदमाततम् ।। २६
– महोपनिषत्, ६/१२

समस्त आत्मा ही शुद्धस्वरुप है, वही शुद्धात्मा चिन्मय अद्वैत ब्रह्म ही सर्वमय है। यह पूरा जगत में नित्य चिद्घन एवं अक्षय ब्रह्मस्वरुप है। सबकी आत्मा व्यापक है, ब्रह्म ही सभी में व्याप्त हैं।। २४,२५,२६

न त्वं नाहं न चान्यं वा सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।। २७
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न तन्मयम् ।। २८
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं सच्चिन्मयं ततम् ।। २९
– महोपनिषत्, ६/११
भ्रांतिरभ्रान्तिर्नास्त्यव सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।। ३०

तत्पदवाच्य, अहंपदवाच्य या अन्य शब्द वाच्य अन्य कुछ भी नहीं है, सब कुछ ब्रह्म है। कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जहां मैं नहीं हूँ, ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसमें मैं तन्मय नहीं हूँ। मैं किसकी वांछा (कामना) करूंगा, सभी चिन्मय ब्रह्मद्वारा व्याप्त हैं। जब सब कुछ ब्रह्म हैं तब भ्रान्ति एवं अपभ्रान्ति कुछ भी नहीं हैं।। २७,२८,२९,३०

न देहो न च कर्माणी सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।। ३१
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/५
लक्षणात्रयविज्ञानं सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ।। ३२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/१०६
जगन्नामा चिदाभति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।। ३३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४/१८

देह भी नहीं है, कर्म भी नहीं है, सब कुछ एकमात्र ब्रह्म है। त्रिविध लक्षणा के विज्ञान स्वरुप एकमात्र ब्रह्म ही सर्वमय है। चिन्मय ब्रह्म ही जगत रूप में प्रतिभात हो रहे हैं, क्योंकि सब कुछ ब्रह्ममय है।। ३१,३२,३३

ब्रह्ममात्रमिदं सर्वं ब्रह्ममात्रमसन्न हि ।। ३४
ब्रह्ममात्रव्रतं सर्वं ब्रह्ममात्ररसं सुखम।। ३५
ब्रह्ममात्रं श्रुतं सर्वं स्वयं ब्रह्मैव केवलम्।। ३६
ब्रह्मैव सर्वं चिन्मात्रं ब्रह्ममात्रं जगत्त्रयम् ।। ३७

समस्त परिदृश्यमान में पदार्थ ब्रह्म हैं। ब्रह्ममय होने के कारण

कोई पदार्थ असत् नहीं है। समस्त व्रत, रस, सुख एवं सर्वशास्त्रज्ञान ब्रह्म से भिन्न अन्य कुछ नहीं हैं, समस्त चैतन्य एवं त्रिजगत स्वयं ब्रह्म ही हैं।। ३४,३५,३६,३७

सर्वं प्रशान्तमजमेकमनादिमध्य
माभास्वरं स्वदनमात्रमचैत्याचिह्नम् ।। ३८
सर्वं प्रशान्तमिति शब्दमयी च दृष्टि
र्बाधार्थमेव हि मुधैव तदोमितीदम ।। ३९
— महोपनिषत्, ४/९

विकल्पशून्य, अज, एक, आदि मध्य वर्जित, ज्योतिः स्वरुप, स्वाद्य–स्वादक भावरहित, आस्वादनमात्र ज्ञान स्वरुप एवं चिरभ्रान्ति रहित निर्विशेष ब्रह्म के अवबोधार्थ जो शब्दमय ओंकारोपदेश है, वह भी निर्विशेष ब्रह्मज्ञान दान में असमर्थ है, क्योंकि निर्विशेष ब्रह्म, शब्द के अवाच्य हैं (यतो वाच्य निर्वत्तन्ते अप्राप्य मनसा सह इति श्रुतेः)।

इति षोड़शं प्रकरणं समाप्तम्।।

सार्धान्तिकब्रह्मस्वरूपवाक्यानि।। १७

इस प्रकरण में ब्रह्मस्वरूप समस्त वाक्य उद्धृत हैं।

सर्वम् होतद्ब्रह्म।। १
— माण्डूकोपनिषत्, २

समस्त परिदृश्यमान ब्रह्म हैं।। १

अयमात्मा ब्रह्म ।। २
— बृहदारण्यकोपनिषत, ४/४/५

यह जीवात्मा ही ब्रह्म है।। २

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म ।। ३
— तेत्तिरियोपनिषत्, १/१/३

ब्रह्म सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरुप हैं।।३

प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानम् ब्रह्म ।। ४
— ऐतरेयोपनिषत् ३/१/३

ब्रह्म, प्रज्ञा, प्रतिष्ठा (आश्रय) एवं प्रज्ञान स्वरूप हैं।।४

तदेत ब्रह्मापूर्व मनपर मनन्तरम बाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः ।। ५
— बृहदारण्यकोपनिषत, २/५/१९

ब्रह्म अपूर्व (कारण रहित), परभाव शून्य, एवं अंर्तवाह्यरहित है। यही ब्रह्म सबके भीतर अनुभूति स्वरुप है इसीलिए सर्वानुभूः है।। ५

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म ।। ६
— बृहदारण्यकोपनिषत्, ३/९/२८/७

वे विज्ञान एवं आनन्दस्वरुप हैं।। ६

अजरोहमरोहमृतोहभयो ब्रह्मोभयं बै ब्रह्म।। ७
— बृहदारण्यकोपनिषत्, ४/४/२५

वे अजर, अमर, अमृत एवं अभयस्वरुप हैं।। ७

सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म।।८
— आत्मप्रबोधोपनिषत्, १

वही ओंकारव्याख्या परब्रह्म सर्वभूत में स्थित हैं, एक नारायण एवं कारण

रहित पुरुष स्वरूप हैं।। ८

स्वरंप्रकाशः स्वयं ब्रह्म।।९

वे स्वप्रकाश एवं स्वयं ब्रह्मस्वरुप हैं।। ९

तदेतदद्वयं स्वप्रकाशं महानन्द मात्मैवेतद ममृते मेतद ब्रह्म ।। १०

-- नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, अष्टम खण्ड

वे अद्वितीय, स्वयं प्रकाशित एवं आनन्द स्वरुप हैं, वे अभय एवं अमृतस्वरुप हैं।। १०

सदेव पुरस्तात् सिद्धं ही ब्रह्म ।। ११

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, नवम् खण्ड

वही ब्रह्म सतस्वरुप है एवं सृष्टि के पूर्व से सिद्धस्वरुप में विराजमान हैं।। ११

आकाशवत् सूक्ष्मं केवलसत्तामात्रस्वभावं परं ब्रह्म।। १२

वही ब्रह्म आकाश की तरह सूक्ष्म (सर्वव्यापी), केवल सत्स्वरुप एवं पर ब्रह्मस्वरुप है।।१२

अद्वितीयम खिलोपाधिविनिर्मुक्तं
तत्सकलशक्त्युपबृंहित मनाद्यनन्तं
शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्य
मनिर्वाच्य मनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म ।। १३

– निरालम्बोपनिषत्,

वह ब्रह्म अखिल अविद्यो के कारण उपाधि रहित, षोड़श कला युक्त शक्ति द्वारा वर्द्धित आद्यान्तरहित, नित्य, शान्त शिवस्वरुप, निर्गुण इत्यादि शब्दवाच्य एवं वाक्यातीत चैतन्य स्वरूप है।। १३

एकमेवद्वितियः ब्रह्म ।। १४

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, तृतीय अध्याय

वही ब्रह्म एक एवं अद्वितीय हैं।। १४

सर्वदानवच्छिनं परम् ब्रह्म ।। १५

– योगचूड़ामनुपनिषत्, ७२

वह सर्वदा देशकालादि परिच्छेद रहित है।। १५

सच्चिदानन्दतेजःकुटरुपं तारकं ब्रह्म ।। १६

तन्नित्यमुक्तमविक्रियं सत्यज्ञानानन्दं
परिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।। १७

– पैङ्गलोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वह नित्यमुक्त, अज, निष्क्रिय, सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दपूर्ण सनातन, एक एवं अद्वितीयस्वरूप है।। १७

चितस्वरुप निरञ्जन परं ब्रह्म।। १८

तत्वंपदलक्ष्यं प्रत्यगभिन्नं ब्रह्म।। १९

वह चित्त स्वरुप, निर्मल स्वभाव एवं परमस्वरुप है। वह तत् एवं त्वं पद के लक्ष्य एवं जीव से अभिन्न है।। १८,१९

अखण्डार्थम् परम् ब्रह्म ।। २०

सर्वकालावाधितम् ब्रह्म ।। २१

त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

सगुणनिर्गुणरूपम् ब्रह्म ।। २१

त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषथ, प्रथम अध्याय

वे सर्वकाल में बाधा--रहित हैं। वे सगुण एवं निर्गुण हैं।। २०,२१,२२

आदिमध्यान्तशून्यम् ब्रह्म ।। २३

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

मायातीतगुणातीतम् ब्रह्म ।। २४

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वे आदि मध्य एवं अन्त शून्य हैं। वे मायातीत एवं सत्वादि गुणरहित हैं।। २३,२४

अनन्तमप्रमेयाखण्ड परिपूर्णम् ब्रह्म ।। २५

–त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वे अनन्त, अप्रमेय, अखण्ड एवं परिपूर्ण स्वभाव हैं।। २५

अद्वितीयपरमानन्दनित्यंशुद्धबुद्धमुक्त
सत्यस्वरूपव्यापकभिन्नापरिच्छिन्नम् ब्रह्म ।। २६

–त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वे अद्वितीय, परमानन्द स्वरुप, नित्य शुद्धबुद्ध एवं मुक्त स्वभाव, सत्यस्वरूप, व्यापक, प्रपञ्चाभिन्न, एवं अपरिच्छिन्नस्वरुप है।। २७

सच्चिदानदस्वप्रकाशम् ब्रह्म ।। २७

–त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

मनोवाचामगोचरम् ब्रह्म ।। २८

–त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

देशतः कालतो वस्तुतः परिच्छेदरहितम् ब्रह्म ।। २९

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वे सच्चिदानन्द, स्वप्रकाश स्वरुप, मन एवं वाक्य से अगोचर हैं। वे देशकाल एवं वस्तु से परिच्छेदरहित हैं।। २७,२८,२९

अखिलप्रमाणागोचरम् ब्रह्म ।। ३०

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषथ, प्रथम अध्याय

तुरीयम् निराकारमेकम् ब्रह्म ।। ३१

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

वे अखिल प्रमाण से अगोचर, ओंकार के चतुर्थ स्थानीय निराकार एवं एक हैं।। ३०,३१

अद्वैतमनिर्वाच्यम् ब्रह्म ।। ३२

– त्रिपादविभूतिमहानारायणोपनिषत्, प्रथम अध्याय

शिवम् प्रमान्तममृतम् प्ररञ्च ब्रह्म।। ५३

वे अद्वैत एवं वाक्यातीत हैं। वे शिव, प्रशान्त–स्वभाव, अमृत एवं परमात्मस्वरुप हैं।।३२,३३

यदेकमक्षरम् निष्क्रियं शिवं
सन्मात्रम् परम् ब्रह्म ।। ३४

– महावाक्य रत्नावली, १७/३१

वे परब्रह्म अक्षर निष्क्रिय; शिव एवं सत्स्वरुप हैं।। ३४

असावादित्या ब्रह्म ।। ३५

– सूर्योपनिषत्

ॐमित्येतदक्षरम् परम ब्रह्म ।। ३६

– तारसारोपनिषत्, द्वितीय अध्याय

यह प्रत्यक्ष सूर्य ही ब्रह्म है। ओंकार ही अविनाशी परम ब्रह्म है।। ३५,३६

ब्रह्मैवेदममृतम् पुरस्ताद ब्रह्म पश्चादब्रह्म
दक्षिणतश्चोत्तरण ।। ३७

– मुण्डकोपनिषत्, २/२/११

अधश्चोर्द्धन्च प्रसृतम् ब्रह्मेवेदम् विश्वमिदम् वरिष्ठम् ।। ३८

वह अमृतस्वरुप ब्रह्म पुरोभाग में, पश्चादभाग में दक्षिण एवं उत्तर दिशा में स्थित है। वह ब्रह्म अधः एवं उर्ध्वदिशा में व्याप्त है, यह विश्व वरणीय ब्रह्मस्वरुप है। ३७,३८

तदेव निष्फलम् ब्रहमनिर्विकल्पम् निरंजनम् ।। ३९

– त्रिपुरातापिनोपनिषत्, ५/८

चैतन्येमेकम् ब्रह्मातः प्रज्ञानम् ब्रह्म मयापि ।। ४०

निष्फल, निर्विकल्प, निरंजन, चैतन्यस्वरुप ब्रह्म ही प्रज्ञारूप में मुझमें विराजमान है।।३९,४०

ब्रह्मशब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ।। ४१

– शुकरहसोपनिषत्, ३/८

एतदभावर्विनिर्मुक्त तद्ब्रह्म ब्रह्मतत् परम ।। ४२

ब्रह्म शब्द द्वारा स्वप्रकाशमान परमात्मा ही उक्त हैं। जो इस स्वातिरिक्त भाव से रहित हैं, वही परब्रह्म कहे जाते हैं।। ४१,४२

चिन्मात्रात्परमं ब्रह्म चिन्मात्रान्नास्ति कोऽपि हि ।। ४३

– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/३५

अखण्डैकरसं ब्रह्म चिन्मात्रान्न हि विद्यते ।। ४४

– तेजोबिन्दूपनिषत्, २/४१

परमब्रह्म ही चिन्मय स्वरूप में उक्त होते हैं, चिन्मात्र कुछ भी व्यतिरेक नहीं है, ब्रह्म अखण्ड एवं एकरस हैं, वे चिन्मात्र से भिन्न कुछ नहीं हैं अर्थात् चिन्मात्र स्वरूप हैं।।४३,४४

सदादितं परं ब्रह्म ज्याजतिषामुदयोथ यतः।।४५
यस्मिन् विलीयते शब्दस्तत् परं ब्रह्म –गीयते।। ४६

– ब्रह्मविद्योपनिषत्, १३

जो ब्रह्म सदैव सूर्यादि ज्योतिर्मय पदार्थों में उदित होते हैं, वे सदाज्योतिः स्वरूप हैं। जिनमें शब्द लय को प्राप्त होता है, उन्हें ब्रह्म कहते हैं।।४५,४६

सर्वशक्ति परं ब्रह्म नित्यमापूर्णद्स्वयम्।।४७
सत्ता सर्वपदार्थानां गम्यं ब्रह्माभिधं पदम्।। ४८

वे सर्वशक्तिमान सर्वत्र सम्यक रूप में परिव्याप्त एवं अव्यय हैं। घट आदि समस्त पदार्थो में सत्ताप्रद ब्रह्म ही एकमात्र प्राप्तव्य होते हैं।। ४७,४८

परं ब्रह्म परं सत्यं सच्चिदानंदलक्षणम्।।४९
–योगशिखोपनिषत्,२/१५

अक्षरं परमं ब्रह्म निर्विशेषं निरन्जनम्।। ५०
––योगशिखोपनिषत्,३/१६

वे परब्रह्म सच्चिदानंद लक्षणयुक्त परासत्त स्वरूप हैं। वे अविनाशी, निर्विशेष एवं निर्मल हैं।। ४९, ५०

ब्रह्मैवैक मनाद्यान्त मब्धित् प्रविजृम्भते।।५१
न किन्चिद्भावनाकारं यत्तद्ब्रह्म परं विदु:।।५२
– महावाक्यरत्नावली,१७

वे आदि एवं अन्त वर्जित हैं, निस्तरंग समुद्र की तरह स्वयं ही प्रकाशित होते हैं। जिसमें किन्चित भी भावनाकार नहीं है, उन्हें ही परमब्रह्म जानें।।५१,५२

एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किन्चन।। ५३
–अध्यात्मोपनिषत्, ६३

ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्वस्तुतोऽवस्तुतोऽपि च ।। ५४
– पाशुपतब्रह्मोपनिषत्, २७

ब्रह्म एक एवं अद्वितीय है, ब्रह्म के अतिरिक्त विभिन्न पदार्थ कुछ भी नहीं हैं क्योंकि वही ब्रह्म नानारूपों में प्रतिभात होते हैं। वस्तुतः अर्थात् रत्रीय सत्यस्वरूप में एवं अवस्तुतः अर्थात् प्रपञ्चस्वरूप में वे ब्रह्म ही साक्षात् विद्यमान हैं।।५३,५४

तद्विद्याविषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम् ।। ५५
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ४/२७

शान्तन्च तदतीतं , परं ब्रह्म तदुच्यते।।५६

वे विद्याविषय अर्थात् माया व उसके कार्य से रहित हैं, वे सुख, सत्य एवं ज्ञान स्वरूप व अद्वय हैं। वे शान्तस्वरूप, माया रहित एवं माया कार्यों से भी अतीत हैं, वे ही परब्रह्म हैं।।५५, ५६

अनुभुतिपरं तस्मात् सारं ब्रह्मेति कथ्यते।। ५७
यदिदं ब्रह्म पुच्छाख्यां सत्यज्ञानान्वयात्मकम्।। ५८
–कठरुद्रोपनिषत्,२२

वे सर्व अनुभुतियों से श्रेष्ठ अनुभुति स्वरूप एवं समस्त सारभूत निर्विशेष स्वरूप हैं। वे पुच्छाया अर्थात् सर्वकारण ब्रह्म, वे सत्य, ज्ञान एवं अद्वय स्वरूप हैं।। ५७, ५८

सद्रूपं परमं ब्रह्म त्रिपरिच्छेदवर्जितम् ।। ५९
– कठरुद्रोपनिषत्, २७

तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं नित्यं संपूर्णं सुखमद्वयम् ।। ३०
– वराहोपनिषत्, २/२०

सत्स्वरूप पाब्रह्म भूत भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कालों से अतीत, आनन्द स्वरूप, द्वन्द रहित, निर्गुण, सत्य एवं चिद्घन स्वरूप हैं।। ५९,६०

सर्वाधिष्ठानमद्वन्द्वं परं ब्रह्म सनातम्।।६१
–रुद्रहृदयोपनिषत्, २६

प्रज्ञानमेव तद् ब्रह्म सत्यप्रज्ञानलक्षणम्।।६२
–वराहोपनिषत्,२/१९

वे समस्त पदार्थो के आधार द्वन्द्व रहित, परमब्ह्म एवं सनातन स्वरूप हैं। वे सत्य प्रज्ञान लक्षणयुक्त प्रज्ञान स्वरूप हैं।। ६१,६२

अस्तीत्युक्ते जगत् सर्वं सद्रुपं ब्रह्म तद्भवेत।। ६३
भातीत्युक्त जगत् सर्वम भानम् ब्रह्मैव केवलम् ।। ६४
– वराहोपनिषत्, २/७२

'है' यह कहते ही सत्स्वरूप ब्रह्म समस्त जगत हो जाते हैं। 'प्रकाश पा रहे हैं', इस कथन से केवल ब्रह्म ही जगत स्वरूप में प्रतिभात हो रहे हैं।।६३,६४

ब्रह्ममात्रं चिदाकाशं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।। ६५
ब्रह्मणोऽन्यतरन्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यज्जगन्न च ।। ६६
ब्रह्मणोऽन्यदहं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्फ्ल नहि ।। ६७

ब्रह्मणोऽन्यत्तृणं नास्ति ब्रह्मणोऽन्यत्पदं नहि ।। ६८

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ४९/५०

समस्त ही ब्रह्ममात्र चिदाकाशपूर्ण एवं सच्चिदानंदलक्षण अन्वय स्वरूप है। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, उनके अतिरिक्त जगत नहीं है। ब्रह्म से भिन्न अस्मत्पदवाच्य अन्य कुछ भी नहीं है, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई प्राप्तव्य फल भी नहीं है। ब्रह्मातिरिक्त कोई तृण नहीं उनके अतिरिक्त अन्य पद (स्थान)भी नहीं है।। ६५,६६, ६७, ६८

ब्रह्मणोऽन्यद्गुरुर्नास्ति ब्रह्मणोऽन्यमसद्वपुः ।। ६९

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/५१

नित्यानन्दमयं ब्रह्म केवलं सर्वदा स्वयम् ।। ७०

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/७२

बीजं मायाविनिर्मुक्तं परंब्रह्मेति कथ्यते ।। ७१

– रामरहस्योपनिषत्, ५/११

मद्रूपमद्वयं ब्रह्म आदिमध्यान्तवर्जितम्।।७२

– वासुदेवोपनिषत्

ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य गुरू नहीं एवं ब्रह्म के अतिरिक्त कोई (असद्वपु) निराकार भी नहीं है। ब्रह्म सभी कालों में स्वयं नित्यानंद स्वरूप हैं। माया रहित समस्त चैतन्य के बीज स्वरूप परमब्रह्म ही कर्त्तित होते हैं। वे अस्मत्प्रत्ययगोचर, अन्वय एवं आदि मध्य व अंत रहित हैं।। ६९, ७०, ७१, ७२

सर्वत्रावस्थितं शान्तं चिद्ब्रह्मेत्यनुभूयते ।। ७३

– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/२१

सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वापह्नव एव हि ।। ७४

नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्लमम् ।। ७५

– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/११२

सर्वव्यापी, प्रपञ्चोपशम, चिद्ब्रह्म ही अनुभूत होते हैं। मोक्षशास्त्र का सिद्धान्त है कि वही ब्रह्म सर्वापन्हवसिद्ध अर्थात् समस्त वस्तुएं उन्हीं में लय प्राप्त होती हैं एवं वे ही ही एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। उनमें अविद्या नहीं, माया नहीं है। वे माया रहित एवं शान्त स्वरूप हैं, ब्रह्म के अतिरिक्त कारणीभूत माया एवं उसके कार्यभूत ग्लानि रहित होने के कारण वे अक्लम हैं।। ७३,७४,७५

स्वात्मन्यारोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः ।। ७६

स्वयमेव परंब्रह्म पूर्णमद्वयमक्रियम् ।। ७७

– अध्यात्मोपनिषत्, २१

स्वयं में आरोपित अशेष आभास युक्त वस्तु में मिथ्या ज्ञान का निवास होने पर द्वयं, पूर्ण, अद्वय, अक्रिय स्वरूप प्रकाशित होता है।। ७६,७७

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।। ७८

– रामरहस्योपनिषत्, ९/६

राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ।। ७९

– रामरहस्योपनिषत्, १/६

(निर्विशेषतया राजते महीयते इति रामः) जो निर्विशेषस्वरूप में विराजमान हैं, वही रामपदवाच्य हैं। वही राम अर्थात् निर्विशेष परमब्रह्म ही परमतत्व है, वे ही तप एवं वे ही अविद्या से पार करते हैं इसलिए तारकब्रह्मस्वरूप हैं।।७८,७९

चिद्रूपमात्रं ब्रह्मैव सच्चिदानन्दमद्वयम् ।। ८०

– तेजोबिन्दूपनिषत्, ३/२६

ऋतं सत्यं परं ब्रह्म सर्वसंसारभेषजम् ।। ८१

– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/७२

चित्स्वरूप ब्रह्म ही सच्चिदानंद एवं अद्वयस्वरूप हैं। वे व्यवहारिक एवं परमार्थिक सत्यस्वरूप हैं। वे भवरोग नाश की एकमात्र औषधि हैं।८०,८१

ब्रह्म चिद्ब्रह्म भुवनं ब्रह्म भूतपरम्परा ।। ८२

ब्रह्माहं ब्रह्म चिच्छत्रुर्ब्रह्म चिन्मित्रबान्धवाः ।। ८३

– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/२०८

ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते।।८४

जगद्रूपतयाप्येतद् ब्रह्मैव प्रतिभासते।। ८५

– आत्मोपनिषत् २१,२२

ब्रह्म ही चित्स्वरूप, वे ही भुवनस्परूप वे ही भूत परस्परा हैं। ब्रह्म ही मैं, ब्रह्मचैतन्य ही शत्रुरूप में विराजमान है, ब्रह्म ही मित्र एवं बान्धव है।। ब्रह्म ही ब्रह्मस्वरूप में प्रतिभासित होते हैं। वे ही जगतरूप में प्रकाशित होते हैं।।

विद्याऽविद्यादिभेदेन भावाऽभावादिभेदतः।। ८६
गुरुशिष्यादिभेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ।। ८७
– आत्मोपनिषत्, ३

इदं ब्रह्म परं ब्रह्म सत्यं ब्रह्म प्रभुर्हि सः ।। ८८
कालो ब्रह्म क्ला ब्रह्म सुखं ब्रह्म स्वयंप्रभम् ।। ८९
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/३५

वे ही विद्या एवं अविद्यारूप में, भाव एवं अभावरूप में एवं गुरू शिष्यादि भेदों में स्वयं प्रकाशित होते हैं। वे परमब्रह्म, सत्यस्वरूप एवं समस्त के प्रभु हैं। वे ही षोड़श कला, वे ही सुख एवं स्वयं ज्योतिस्वरूप हैं।। ८६,८७,८८,८९

दोषो ब्रह्म गुणो ब्रह्म दमः शान्तं विभुः प्रभुः ।। ९०
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/३६

लोको ब्रह्म गुरुर्ब्रह्म शिष्यो ब्रह्म सदाशिवः ।। ९१
पूर्वं ब्रह्म परं ब्रह्म शुद्धं ब्रह्म शुभाशुभम् ।। ९२
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/३७

जीव एव सदा ब्रह्म सच्चिदानन्दमस्त्यहम् ।। ९३
– तेजोबिन्दूपनिषत्, ६/३८

वही ब्रह्म दोष, गुण, दम, शम, विभु एवं समस्त प्रभु स्वरूप हैं। समस्त लोक ब्रह्म एवं गुरू–शिष्यादि भी नही सदाशिव ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म सबके पूर्व अर्थात् आदि एवं वे ही पर अर्थात् श्रेष्ठ हैं।

शुद्ध स्वरूप वे ही शुभ एवं अशुभ, जीव ही स्वयं ब्रह्मस्वरूप एवं सनातन है।९०,९१,९२,९३

इति सप्तदशंप्रकरणं समाप्तम्।।

सार्धान्तिकावशिष्टवाक्यानि।।१८

इस प्रकरण में ब्रह्म से अवशिष्ट समस्त वाक्य उद्धृत हैं।

सर्वविशेषं नेति नेतीति विहाय यदवशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म।।१

निज अज्ञानपिकल्पित समस्त विषयभाव 'नेतिनेति' अर्थात् यह ब्रह्म नहीं यह ब्रह्म नहीं इस निषेध वाक्य द्वारा त्याग कर जो अवशिष्ट निर्विषेष भाव है वही अद्वय ब्रह्म स्वरूप है।। १

जीवभावजगन्भाववोध प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यते।।२

स्वयं में समारोपित स्वातिरिक्त जीव एवं जगतभाव 'ब्रह्मातिरिक्त कुछ भी नहीं' इस ज्ञान द्वारा जब बाधित होता है तब जीव भिन्न ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं।।२

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।। ३
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। ४
– ईशोपनिषत्, शांतिपाठ

(अदः) जो समस्त पदार्थ इन्द्रियों से अगोचर अर्थात् सूक्ष्म हैं वे ब्रह्म द्वारा व्याप्त अर्थात् पूर्ण, (इदं) जो पदार्थ इन्द्रिय गोचर अर्थात् प्रत्यक्ष हैं वे भी ब्रह्म द्वारा पूर्ण एवं यह समस्त जगत ही ब्रह्म से अभिव्यक्त हुआ है व उसी पूर्णस्वभाव ब्रह्म की पूर्णता जगत में व्याप्त होने के पश्चात भी उसकी पूर्णता अवशिष्ट रहती है अर्थात् उसकी पूर्णता में कभी हानि नहीं होती।। ३,४

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ।। ५
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ।। ६
– शुकरहस्योपनिषत्, ३,'१२

अविद्याकार्य अंतःकरणोपाधियुक्त को जीव एवं मूल विद्यारूप कारणोपाधियुक्त को ईश्वर कहते हैं। निज अज्ञानकल्पित कार्यकारणरूप उपाधि का अपन्हव होने पर पूर्णस्वरूप परमात्मा ही अवशिष्ट रहते हैं।।५,६

ततःस्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ।। ७
अनाख्यामनभिव्यक्तं सत्किंचिदवशिष्यते ।। ८
– महोपनिषत्, २/६५

ब्रह्म विशेषणरहित एवं भूमास्वरूप होने के कारण स्थिर समुद्र की तरह गम्भीर हैं, भौतिक तेज या तमोगुण भी नहीं है। वे मायारहित होने के कारण आख्या एवं अभिव्यक्तिरहित स्वरूप में अवशिष्ट रहते हैं।।७,८

संकल्पमनसी भिन्ने न कदाचन केनचित् ।। ९
संकल्पजाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ।। १०
– महोपनिषत्, ४/५३

वृत्ति एवं वृत्तिमान के अभेद हेतु संकल्प एवं मन का कदापि – किसी प्रकार का भेद नहीं हो सकता। ''ब्रह्मातिरिक्त काम संकल्पादि वृत्ति नहीं है''इस ज्ञान द्वारा जब उक्त मानसिक संकल्प क्षय को प्राप्त होते हैं, तब स्वस्वरूपमात्र ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं।। ९,१०

महाप्रलयसंपत्तौ ह्यसत्तं समुपागते।।११
अशेषदृश्ये स्वर्गादौ शान्तमेवावशिष्यते।।१२

महाप्रलय के समय जब अशेष दृश्य सृष्टि का नाश होता है तब एकमात्र प्रपञ्चरहित शान्तस्वरूप ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं।।११,१२

खेदोल्लासविलासेषु स्वात्मकर्तृतयैकया ।।१३
स्वसंकल्पे क्षयं याते समतैवावशिष्यते ।। १४
– महोपनिषत्, ६/३

अज्ञान के कारण अपने कतृत्व के अभिमान से सुख–दुःख के खेल में जब '' ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं'' इस समज्ञान द्वारा संकल्प का क्षय होता है, तब समस्वरूप ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं।।१३,१४

समता सर्वभावेषु यासौ सत्यपरा स्थितिः ।। १५
– महोपनिषत्, ६/४
परमामृतनाम्नी सा समतैवावशिष्यते ।। १६
– महोपनिषत्, ६/२

समस्त भावों में सत्यपरा स्थिति अर्थात् ब्राह्म स्थिति (स्वातिरिक्त विषमता ग्रास)– को समता कहते हैं। जो परमा एवं अमृतस्वरूपिणी (विदेह कैवल्य रूपिणी) है वही समता अर्थात् ब्रह्मरूपता ही अवशिष्ट रहती है।१५,१६

कालत्रयमुपेक्षित्र्या हीनायाश्चैत्यबन्धनैः ।। १७
चितश्चौत्यमुपेक्षित्रयाः समतैवावशिष्यते ।। १८
– संन्यासोपनिषत्, २/२७

नज अज्ञानविकल्पित भूत भौमिक सर्वभाव में विषमभाव दृष्ट होने पर ब्रह्मज्ञान द्वारा समता (ब्रह्मरूपता) उत्पन्न होती है, तब ''ब्रह्मातिरिक्त भूतादिकात्रय नहीं हैं'' इस ज्ञान द्वारा तीनों कालों की उपेक्षा कर एवं चित्त से उठने वाले बंधन से रहित होकर भी चित्त एवं चैत्य से वर्जित होकर निर्विशेष ब्रह्मरूपतारूपी समता (ब्रह्मभाव) अवशिष्ट रहती है।। १७,१८

सा हि वाचामगम्यत्वादसत्तामिव शाश्वतीभ् ।। १९
नैरात्मसिद्धात्मदशामुपयातैव शिष्यते ।। २०
– संन्यासोपनिषत्, २/२८

उस समता वाक्य के अतीत एवं निर्विशेष हेतु स्वातिरिक्त असत्ता रूपी परमार्थिक ज्ञान से निज अज्ञान कल्पित जीव एवं जगत्भाव जब विलीन होता है उसे नैरात्म्य सिद्धांत दशा कहते हैं। उसी परमार्थिक अवस्था में एकमात्र समता स्वरूप चिन्मात्र ही अवशिष्ट रहते हैं।।।१९,२०

यावद्यावन्मुनिश्रेष्ठ स्वयं संत्यज्यतेऽखिलम् ।। २१
तावत्तावत्परालोकः परमात्मैव शिष्यते ।। २२
– अन्नपूर्णोपनिषत्, १/४४

हे मुनिश्रेष्ठ! निर्विशेष ब्रह्म के आवरण स्वरूप भेदज्ञान को मनुष्य जैसे–जैसे त्याग करता है, वैसे–वैसे ''मैं ही परमात्मा हूँ'' यह परा आलोक -स्वरूप ब्रह्मभाव में स्थित होता है।।२१,२२

अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते ।। २३
मनः प्रशममायाति निर्वाणमवशिष्यते ।। २४
– अन्नपूर्णोपनिषत्, २/३२

वेदान्त श्रवणसहकृत यम आदि अष्टांग योगानुष्ठान द्वारा प्राण आदि की वृत्ति जन्य विक्षेप का नाश होने पर मन का भी नाश होता है, तब निर्वाण अर्थात् मुक्ति ही अवशिष्ट रहती है।।२३,२४

ज्ञेयवस्तुपरित्यागाद्विलयं याति मानसम् ॥ २५
मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते ॥ २६
– शाण्डिल्योपनिषत्, १/४०

निर्विशेष ब्रह्मवित् जब घटादि समस्त साधारण ज्ञेय पदार्थ का ''नेति'' अर्थात् यह ब्रह्म नहीं इस निषेधमुखीज्ञान द्वारा परित्याग करते हैं तब मन के लिए कुछ भी ज्ञेय न होने के कारण निरलम्वन हेतु मन का भी लय होता है एवं मन के लय होने से कैवल्य अर्थात् मुक्ति ही अवशिष्ट रहती है॥२५,२६

यतो वाचो निवर्तन्ते विकल्पकलनान्विताः ॥ २७
विकल्पसंक्षयाज्जन्तोः पदं तदवशिष्यते ॥ २८
– अन्नपूर्णोपनिषत्, २/३३

जब निर्विधेष ब्रह्मभाव से घटपट आदि नानाविध विकल्प कलाओं के समस्त वाक्य निर्वातित होते हैं, उस समय जीव चित्त से उत्पन्न विविध मिथ्याज्ञान का भी संक्षय होता है, उस समय निर्विशेष ब्रह्म पद ही अवशिष्ट रहता है॥२७,२८

चिद्व्योमेव किलास्तीह परापरविवर्जितम् ॥ २९
सर्वत्रासंभवच्चैत्यं यत्कल्पान्तेऽवशिष्यते ॥ ३०
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/३६

कल्प के अंत में इस समय एवं पूर्वकाल में पर एवं अपर भाव (पर शिव एवं अपर जीव) वर्जित, ब्रह्मातिरिक्त चैत्यभाव रहित एवं आकाशवत् व्यापक चिदाकाश ही अवशिष्ट रहता है॥२९,३०

पन्चरूपपरित्यागाद्स्वरूपप्रहानतः॥३१
अधिष्ठानं परं तत्वमेकं सच्छिष्यतेचमहत्॥३२
–वह्वचोपनिषत्।

निर्विशेष ब्रह्म के अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है, इस ज्ञान द्वारा ब्रह्म के पन्चरूप (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव) का परित्याग कर एवं भूत भौतिक रूप अर्थात् सबका त्याग करने के बाद समस्त प्रपञ्चों के अधिष्ठान, महत् परतत्व स्वरूप एवं सत्स्वरूप ब्रह्म ही अवशिष्ट रहते हैं॥३१,३२

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः ॥ ३३
स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥ ३४
– कठरुद्रोपनिषत्, ४२–४३

हे शिष्य! मैं (गुरू) सर्ववेदान्तसिद्धान्तसार वाक्य बोल रहा हूँः– ब्रह्म ही स्वयं मृत्यु प्राप्त होकर स्वयं जन्म ग्रहण कर स्वयं ही अवशिष्ट रहते हैं, क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है॥ ३३,३४

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्चयत् ॥ ३५
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रूवं तदेव शिष्यत्मलं निरामयम् ॥ ३६
– योगकुण्डल्युपनिषत्, ३/३५

वही ब्रह्म समस्त विश्लेषण रहित होने के कारण अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य अगन्ध, आदि अन्त रहित, महत तत्व से भी श्रेष्ठ, ध्रुव, अमल एवं निरामय निर्विशेष रूप में स्वयं ही अवशिष्ट रहते हैं॥ ३५,३६

इति अष्टादशं प्रकरणं समाप्तम्॥

सार्धान्तिकफलवाक्यानि।।१९

इस प्रकरण में ब्रह्मज्ञान के फलस्वरूप (ब्रह्मरूपता) के समस्त वाक्य उद्धृत हैं।

स यो ह वै तत्परमं ।। १
— मुण्डकोपनिषत्, ३/२/९

जो सबसे पर अर्थात् श्रेष्ठ हैं, वे ही ब्रह्म हैं।।१

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति ।। २
— मुण्डकोपनिषत्, ३/२/१०

ब्रह्मवेत्ता स्वयं ब्रह्म होते हैं।।२

ब्रह्मविद्योप्नोतिपरम् ।।३
— तैत्तिरीयोपनिषत् । २/१/३

ब्रह्मसंस्थेऽमृतत्वमेति ।। ४
— छान्दग्योपनिषत्, २/२७/१

ब्रह्मज्ञ एवं ब्रह्मस्थ परिव्राट ब्रह्मज्ञान द्वारा परमब्रह्म एवं अमृत हो जाते हैं अर्थात् मुक्ति लाभ करते हैं।।३,४

तरति शोकमात्मवित् ।। ५
—छान्दग्योपनिषत्, ७/१/३

स एवं वेदाहं ब्रह्मास्मिति स इदं सर्वं भवति।।६

आत्मज्ञान सम्पन्न व्यक्ति शोकयुक्त नहीं होते। ''मैं ही ब्रह्म हूँ'' जिन्हें यह ज्ञान हो जाए वही सर्वमय (ब्रह्ममय) होते हैं।५,६

स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्माविद् विद्वान ब्रह्मैवाभि प्रैति।।७

—कौषीतकुयपनिषत्,१/४

वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष सुकृति एवं दुष्कृति रहित होकर ब्रह्म को ही प्राप्त कर लेते हैं।।७

य एवं निर्विजं वेद निर्बीज एव स भवति
तद्वब्रह्मैवाह मस्मिति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरण भ्रमरकीटन्यायेन
शरीरत्रयमुत्सृज्य संन्यासेनैव

देहत्यागं करोति स कृतकृत्यो भवति।।८

जो ज्ञानी पुरुष निर्विशेष ब्रह्म को जान लेते हैं, वे स्वयं ही निर्विशेष ब्रह्म हो जाते हैं। ''मै वही ब्रह्म हूँ '' इस प्रकार ज्ञान युक्त होकर ब्रह्मस्वरूप ओंकार का ध्यान कर भ्रमर *कीट के समान हो जाते हैं।।

(* जिस प्रकार भ्रमर से उत्पन्न कीट स्वकारणीभूत संस्कार का (भ्रमररूप का) ध्यान कर कीटत्व के अभिमान का त्याग कर स्वयं भ्रमर हो जाता है।)

युक्ति द्वारा स्थूल–सुक्ष्म कारण शरीर का परित्याग कर जो ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त का का त्याग कर देहाभिमान का परित्याग करते हैं, वे कृत्कृत्य अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।।८

तमेवं ज्ञात्वा विद्वान्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।। ९
— नारदपरिव्राजकोपनिषत्, ९/९
तदैवं विद्वांस इहैवामृता भवन्ति ।। १०
— शाटयायनीयोपनिषत्, १८,

विद्वान व्यक्ति उस ब्रह्म को जानकर मृत्युमुख से मुक्त होते हैं यहां तक कि जीवित अवस्था में भी मुक्त हो सकते हैं।।९,१०

अनाद्यनस्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।। ११
— कठोपनिषत्, १/३/१५

आदि एवं अंत रहित महत् तत्व से भी श्रेष्ठ एवं ध्रुव स्वरूप ब्रह्म को जानकर ब्रह्मवित् मृत्युमुख से मुक्त होते हैं।।११

यज ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वंच गच्छति ।। १२
— कठोपनिषत्, २/३/८

उस ब्रह्म को जानकर जीव मृत्यु से मुक्त होकर अमृतत्व अर्थात् मुक्तिपद लाभ करते हैं।।१२

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं
पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।। १३
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय
निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।। १४
– मुण्डकोपनिषत्, ३/१/३

जब तत्वज्ञानी ज्योतिर्मय जगत्कर्त्ता ईश एवं पुरुषपदवाच्य एवं ब्रह्मादि के भी कारण का ज्ञान दृष्टि से दर्शन करते हैं, तब पुण्य पाप से रहित होकर निर्मल स्वरूप परम सम भाव (ब्रह्मभाव) को प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।।१३,१४

एतद्षो वेद निहितं गुहायां
सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य ।। १५
– मुण्डकोपनिषत्, २/१/१०

हे सौम्य! जो हृदयगुहा स्थित ब्रह्म को जान सकता है, उसकी अविद्या ग्रंथि का छेदन हो जाता है।।१५

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्चिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।। १६
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।। १७
– मुण्डकोपनिषत्, २/२/८

उस सर्वभावमय ब्रह्म का दर्शन हो जाने पर हृदय की अविद्याग्रंथि छिन्न हो जाती है, समस्त संशयों का नाश होता है एवं समस्त कर्मों का भी क्षय हो जाता है।। १६, १७

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
ऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।। १८
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।। १०
– मुण्डकोपनिषत्, ३/२/८

जिस प्रकार समस्त नदियां अपने–अपने नाम एवं रूप का त्याग कर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मवित् अज्ञानविकल्पित नाम एवं रूप विनिर्मुक्त होकर सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष दिव्यस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।। १८/१९

ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ।। २०
– कैवल्योपनिषत्, ९
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम् ।। २१
– ब्रह्मबिन्दूपनिषत्, ८

उस ब्रह्म को जानकर ही जीव मृत्यु का अतिक्रम कर सकता है। मुक्ति का इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। "मैं ही ब्रह्म हूँ" यह जान लेने पर विद्वान को निश्चिय ही ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है।।२०,२१

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षरवित् सदा।।२२
पर ब्रह्मणि लीयते न तसोत्क्रान्तिविष्यते।।२३

परम अक्षरस्वरूप ब्रह्मज्ञानी जिस समय देहत्याग की इच्छा करते हैं, उस समय वे परमब्रह्म में ही लय को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् इच्छामृत्यु होती है। ब्रह्मलाभ के अतिरिक्त उनका अन्य मरण नहीं है।। २२,२३

यद्दत्स्वाभिमतं वस्तु तत्त्यजन्मोक्षमश्रुते ।। २४
– महोपनिषत्, ४/८८

ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य अभिमत वस्तुओं का त्याग कर मोक्ष लाभ करें।।२४

असंकल्पनशस्त्रेण छिन्नं चित्तमिदं यदा ।। २५
सर्वं सर्वगतं शान्तं ब्रह्म संपद्यते तदा ।। २६
– महोपनिषत, ४/९१

जब संकल्प रहित रूप शस्त्र द्वारा ब्रह्मवेत्ता का चित्त विनष्ट हो जाता है, तब वे सर्वव्यापी सर्वात्मक शान्तस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।।२५,२६

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्।।२७
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्मोप्येति सनातनम्।।२८

ध्यानयोग में प्रिय–अप्रिय जन्य दुष्कृतों का परित्याग कर ब्रह्मज्ञानी सनातन ब्रह्म को ही प्राप्त कर लेते हैं।। २७,२८

घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः ।। २९
स गच्छति निरालम्ब ज्ञानालोकं समन्ततः ।। ३०
– पैङ्गलोपनिषत्, ४/१४

जो घटाकाश की तरह आत्मविलय (उपधिनाश) तत्वज्ञान को ज्ञात कर

लेते हैं, वे निरालम्ब सनातन ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।। २९,३०

तृणाग्रेष्मम्बरे भानौ नरनागामरेषु च ।। ३१
यत्तिष्ठति तदेवाहमिति मत्वा न शोचति ।। ३२
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ५/१४

''तृणाग्र में, आकाश में, सूर्य में मनुष्य में, सर्प एवं अमरगणों में जो (ब्रह्म) सर्वत्र विराजमान हैं, मैं ही वह ब्रह्म हूँ'' जो ब्रह्मवित् इस प्रकार मनन करते हैं, वे शोकरहित हो जाते हैं।। ३१,३२

सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रमविवर्जितम् ।। ३३
ब्रह्मरूपतया पश्यन्ब्रह्मैव भवति स्वयम् ।। ३४
– वराहोपनिषत्, २/१३–१४

ब्रह्मवेत्ता वर्णाश्रम रहित समस्त साक्षी स्वरूप परमात्मा का ब्रह्मरूप में दर्शन कर स्वयं ब्रह्म हो जाते हैं।।३३,३४

तद् ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ।। ३५
विदित्वा स्वात्मनो रूपं न विभेति कुतश्चन ।। ३६
– वराहोपनिषत्, २/२०

वे ब्रह्म ही आनन्दस्वरूप, द्वन्द्वरहित, निर्गुण एवं चिद्घन स्वरूप हैं। जिन्होंने निज ब्रह्मरूप का ज्ञान लाभ कर लिया है, उस ब्रह्मवित् पुरुष को किसी से भी भय उत्पन्न नहीं होता।। ३५,३६

वासनां संपरित्यज्य मयि चिन्मात्रविग्रहे।।३७
यस्तिष्ठेटि गतव्यग्रेः सोऽहत् सचि चत्सुखात्मकः।। ३८
मुक्तिकोपनिषत्,२/१८

जो व्यक्ति वासना के परित्याग पूर्वक चिन्मात्र स्वरूप (मुझमें) अस्मत्पदवाच्य ब्रह्म में विगत स्नेह होकर अवस्थान करता है वह सोऽहं पदवाच्य सच्चित् एवं सुखात्मक ब्रह्मस्वरूप है।।३७,३८

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः।।३९
य आस्ते कपिशार्दुल ब्रह्म न ब्रह्मवित् स्वयम्।।४०
–मुक्तिकोपनिषत्,२/६८

हे कपिश्रेष्ठ! जो दर्शन एवं अदर्शन भाव (स्वयं का जीवभाव में दर्शन एवं ब्रह्मरूप में दर्शन) का परित्याग कर स्वयं निज शुद्ध स्वरूप में स्थित होते हैं, उन्हें ब्रह्म कहते हैं, वे ब्रह्मवित् पदवाच्य नहीं हैं।। ३९, ४०

इति एकोनविंशं प्रकरणम् समाप्तम्।।

सार्धान्तिकविदेहमुक्तिवाक्यानि।।२०

इस प्रकरण में ब्रह्ममात्रावस्थान लक्षण विदेहमुक्ति के समस्त लक्षण उद्धृत हैं।

विमुक्तश्च विमुच्यते।।१

–कठोपनिषत् २/२/१

जो ब्रह्मस्वरूप नित्यमुक्त होकर भी अपने अज्ञान वश बद्ध की तरह प्रतीयमान होते हैं, पुनः "अहं ब्रह्मास्मि" इस ज्ञान दृष्टि द्वारा अपने अज्ञान से विमुक्त हो जाते हैं, उन्हें विमुक्त कहते हैं।।१

गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।। २

– मुण्डकोपनिषत्, ३/२/२९

हृदयगुहास्थित अविद्या ग्रन्थि से विमुक्त पुरुष अमृत ब्रह्मस्वरूप अर्थात् विदेहमुक्तपदवाच्य हो जाते हैं।।२

अथाकामयमानोऽथाकामयमानो योऽकामो निष्काम
आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा
उत्क्रामन्तत्रैव समवलीयन्ते
ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्योति ।। ३

– बृहदारण्यकोपनिषत्, ४/४/६

वे ब्रह्म के अतिरिक्त प्रपञ्चों में विरक्ति के पश्चात् कामना योग्य विषय के अभाव वश अकाम अर्थात् कामना रहित पुरुष एवं निष्काम पदवाच्य हो जाते हैं, ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कामना न रहने के कारण वे आत्मकाम एवं पूर्णकाम होने के कारण आप्तकाम हैं।। इस प्रकार अकाम, निष्काम, आत्मकाम एवं आप्तकाम पुरूष के प्राण आदि पंच प्राण स्वाधिकरण ब्रह्म में लय को प्राप्त होते हैं, वे ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं।।३

तद्यथाऽहिनिर्ल्वयनी वल्मीके मृता
प्रत्यस्ता शयीतैवमेवेदं शरीरं शेतेऽ
थायमशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव ।।

– बृहदारण्यकोपनिषत्, ४/४/७

अशरीरो निरिन्द्रियोऽप्राणोऽतमाः
सच्चिदानन्दमात्रः स स्वराट् भवति।। ४

– नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषत्, सप्तम खण्ड

जिस प्रकार सर्प की त्वचा (साँप की केंचुली) स्वाश्रय वल्मीक में (दीमक के स्तूप में) मृत् की भांति परित्यक्त होकर गिरी रहती है, उसी प्रकार ब्रह्मवित् पुरूष अपने ब्रह्मभाव द्वारा परित्यक्त अभिमान होकर स्थूल, सुक्ष्म एवं कारण इन त्रिविध शरीरों से सचेतन होकर भी मृत् की तरह रहता है। वह विदेहमुक्त पुरुष अमृत् एवं प्राण स्वरूप ब्रह्मज्योति में शरीर रहित एवं निरिन्द्रिय होकर प्राण एवं अविद्या रहित सच्चिदानंद स्वरूप हो जाते हैं अर्थात् ब्रह्मस्वरूप स्वकीय (अपनी) महिमा में विराज करते हैं।।४

पृथिव्यप्सु प्रलीयत आपस्तेजसि
प्रलीयन्ते तेजोवार्यो विलीयते वायुराकाश
आकाशमिन्द्रियेष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु
तन्मात्रानि भूतादौ विलीयन्ते भूतादिर्महति
विलीयते महानव्यक्ते विलीतहव्यक्तमक्षरे
विलीयतेह क्षरं तमसि विलीयते तमः
परे देव एकीभवति परस्तान्न सन्नासन्न सदसत्।।५

–सुवालोपनिषत्, द्वितीय खण्ड

पृथ्वी स्वकारण जल में लय को प्राप्त होती है, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश इन्द्रिय में, समस्त इन्द्रियां तन्मात्र में, तन्मात्र भूतकारण अहंकार में, अहंकार महत् तत्व अव्यक्त प्रकृति में, अव्यक्त प्रकृति अक्षर पुरुष में, अक्षर पुरुष तम में (साक्षी स्वरूप) एवं स्वरूप साक्षीत्व पर देवता में (निर्विशेष ब्रह्म में) लय को प्राप्त होते हैं। उस समय निर्विशेष ब्रह्म के अतिरिक्त कोई वस्तु सत् एवं असत् पदवाच्य नहीं होती।।५

ब्रह्माण्डं तद्गतलोकान् कार्यरूपांश्च कारणत्वं
प्रापयित्वा ततः सूक्ष्माङ्ग कर्मेन्द्रियाणि प्राणांश्च
ज्ञानेन्द्रियाण्यन्तःकरण चतुष्टयं चैकीकृत्य सर्वाणि
भौतिकानि कारणे भूतपञ्चके संयोज्य

भूमिं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ वायुमाकाशे
चाकाशमहंकारे चाहंकारं महति महदव्यक्तेऽ
व्यक्तं पुरुषे क्रमेण विलीयते विराट
हिरण्य गर्भेश्वरा उपाधिविलयात् परमात्मनि लीयन्ते ।। ६
– पैङ्गलोपनिषत्, तृतीय अध्याय।

ब्रह्माण्ड एवं तद्गत लोकसमूह व कार्यरूप समस्त विषय अपने–अपने कारण लय को प्राप्त होकर एवं कार्यरूप से सुक्ष्मांग पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं मन बुद्धि, चित्त, अहंकार ये अन्तःकरण चतुष्टय अपने–अपने कारण से लय को प्राप्त होते हैं। समस्त भौतिक कारण स्वरूप पंच तन्मात्र में संयुक्त होकर भूमि जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत् तत्व में, महत् तत्व अव्यक्त प्रकृति में एवं प्रकृति परम पुरुष में क्रमशः विलय को प्राप्त होते हैं व विराट हिरण्यगर्भ ईश्वर ये सभी निज–निज उपाधि से रहित होकर अपने–अपने कारणों से परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।।६

प्रारब्धक्षयवशाद्देहत्रयभङ्गं प्राप्योपाधि
विनिर्मुक्तघटाकाशवत् परिपूर्णता विदेहमुक्तिः।।७

जिस प्रकार घट आदि उपाधि से रहित होने पर घटाकाश आवरणशून्य होता है, उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता के प्रारब्ध के क्षय वश स्थूल–सुक्ष्म कारणरूप त्रय देहों को नाश प्राप्त होने पर उसकी परिपूर्णरूपा (देह त्रय के आवरण से रहित) ब्राह्मी स्थिति को विदेहमुक्ति कहते हैं। ७

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।। ८
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।। ९
– कठोपनिषत्, २/३/१४

जब ब्रह्मवेत्ता के हृदय स्थित निर्विशेष ब्रह्मावरणस्वरूप समस्त कामनाएं लय को प्राप्त होती हैं, तब शरीर धारण वश मरणधर्मा होकर भी वे अमृत अर्थात् मरण धर्म रहित एवं इसी शरीर से ब्रह्म को प्राप्त होते हैं अर्थात् विदेह मुक्त होते हैं।।८,९

वेदान्ताविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।। १०
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। ११
– मुण्डकोपनिषत्, ३/२/६

जिन्हें ईशादि सर्व वेदान्तार्थ ज्ञान सुनिश्चित रूप से ज्ञात होता है, वे ब्रह्म में सर्व कर्म त्यागरूप सन्यास द्वारा विशुद्ध हो जाते हैं। वे ब्राह्मस्वरूप में सम्यक ज्ञान सम्पन्न होकर ब्रह्मस्वरूप में जीवितावस्था में ही ब्रह्मभावापन्न होकर विदेहमुक्तपदवाच्य हो जाते हैं।। १०,११

तस्याभिध्यानाद् योजनातत्वभावाद्
भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः।।१२

''ब्रह्मैवेदं सर्वम् अर्थात् जो निर्विशेष ब्रह्म है वही समस्त ब्रह्म है'' इस ध्यान के परि पाक वश ''वे ही सर्वमय हैं'' यह ऐक्य ज्ञान जिसे उत्पन्न हो जाता है, अंत में उस निर्विशेष ब्रह्मसाधक की समस्त माया व उसके कार्यों से निवृत्ति हो जाती है।।१२

जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।। १३
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव ।। १४
– पैङ्गलोपनिषत्, ३/३

''अहं ब्रह्मास्मिति अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ'' जब ऐसी ब्रह्ममयी वृत्ति लहरी प्रवााहित होती है, तब उसे जीवन्मुक्ति कहते हैं। वह जीवन्मुक्त पुरुष प्रारब्ध कर्म के क्षय पर्यन्त भूमास्वरूप ब्रह्म में स्थित होकर स्पन्दनहीन वायु की भांति अत्यान्तिक देहाभिमान का नाश कर एवं स्वाधिष्ठित देह में मिथ्याज्ञान का क्षय कर देहत्याग के पश्चात् विदेहमुक्त पदवाच्य हो जाते हैं।।१३,१४

ततस्तु सर्वभूवासौ यद्गिरामप्यगोचरः ।। १५
यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत् ।। १६
विज्ञानमात्रं विज्ञानविदां यदमलात्मकम्।। १७
– अन्नपूर्णोपनिषत्, ३/१९–२०

वे जीवन्मुक्त मुनि आत्यान्तिक अभिमान की निवृत्ति के पश्चात् मन एवं वाक्य के अगोचर ब्रह्ममात्र पद को प्राप्त होते हैं अर्थात् वे विदेहमुक्त हो जाते हैं। यह विदेहमुक्ति शून्यवादिगण के शून्यस्वरूप, ब्रह्मवादिगण के ब्रह्मस्वरूप एवं वह विज्ञानवादिगण के निर्मल विज्ञानस्वरूप है।। १५,१६,१७

पुरुषः सांख्यदृष्टी नामीश्वरो योगवादिनाम् ।। १८
शिवः शैवागमस्थानां कालः कालैकवादिनाम्।। १९
— अन्नपूर्णोपनिषत, ३/२०–२१

यह विदेहमुक्ति (ब्रह्मपद) सांख्य वादियों द्वारा पुरुष, योग वादियों द्वारा ईश्वर, शैवगणों द्वारा शिव एवं कालवादिगणों द्वारा काल के रूप में परिचित है।।१८,१९

यत्सर्वशास्त्रसिद्धान्तं यत्सर्वहृदयानुगम् ।। २०
यत्सर्वं सर्वगं वस्तु यत्तत्त्वं तदसौ स्थितः ।। २१
— अन्नपूर्णोपनिषत, ३/२१–२२

जो सबके हृदयग्राह्य, सर्वशास्त्रों के सिद्धान्तरूप है, जो सर्वव्यापक वस्तु एवं जो परमार्थ तत्वस्वरूप है, वही विदेहमुक्ति है।।२०,२१

यदनुक्तमनिष्पन्दं दीपकं तेजसामपि ।। २२
स्वानुभूत्यैकमानंच यत्तत्त्वं तदसो स्थितः ।। २३
— अन्नपूर्णोपनिषत, ३/२२–२३

उदय व अस्त आदि से रहित होने के कारण वे अनुत्तम चित् सूर्य, एवं जो सूर्य आदि तैजस पदार्थों के भी प्रकाशक या उद्दीपक हैं एवं जो ब्रह्मवेत्ता की निज अनुभुति से ही एकमात्र गम्य है, उसे (ब्रह्मपद को) विदेहमुक्ति कहते हैं।२२,२३

यदेकं चाप्यनेकं च साञ्जनं च निरञ्जनम् ।। २४
यत्सर्वं चाप्यसर्वं च यत्तत्त्वं तदसो स्थितः ।। २५
— अन्नपूर्णोपनिषत, ३/२३

जो एक एवं बहु है, जो मायायुक्त हेतु साञ्जन (समल) एवं मायातीत होने के कारण निरञ्जन (निर्मल) है, जो समस्त भावों को धारण करती है फिर भी असर्व अर्थात् निर्विशेष भाव में स्थित है, वही (ब्रह्मपद ही) विदेहमुक्ति है।।२४,२५

निरानन्दोऽपि सानन्दः सच्चासच्च बभूव सः ।। २६
— अन्नपूर्णोपनिषत्, ३/१८
न चेतना न च जड़ो न चैवासन्न सन्मयः।।२७
— अन्नपूर्णोपनिषत्, २/२०

वे निर्विशेष होने के कारण निरानन्द होकर भी सानन्द हैं, सत् एवं असत् उभयस्वरूप, वे चेतन या जड़ नहीं हैं एवं सत् या असत् भी नहीं हैं।।२७

अजममर मनाद्यमाद्यमेकं
पदममलं सकलं च निष्कल च ।। २८
स्थित इति स तदा नभः स्वरुपा
दपि विमलस्थितिरीश्वरःक्षणेन।। २९
— अन्नपूर्णोपनिषत्, ३/२४

जन्म आदि से रहित होने के कारण वे अज, नाशरहित होने के कारण अमर, स्वातिरिक्त कारण रहित होने से वे अनादि व अनंत, अद्वितीय होने के कारण एक, प्राप्तव्य होने के कारण पदस्वरूप, मायारहित होने के कारण अमल, षोड़श कलायुक्त होने के कारण वे सकल, लेकिन स्वभावतः वे निष्कल अर्थात् कलारहित हैं। जो एवम्भूत ब्रह्मरूप में स्थित हैं, वे निर्विशेष ब्रह्मज्ञान के उत्तरकाल में सर्वविकल्प रहित होकर आकाश से भी विमल स्थिति सम्पन्न ईश्वरत्व को प्राप्त करते हैं। इसी ईश्वरीय भाव को विदेहमुक्ति कहते हैं।। २८,२९

व्यपगतकलनाकलङ्कशुद्धः
स्वयममलात्मनि पावने पदेऽसौ ।। ३०
सलिलकण इवाम्बुधौ महात्मा
विगलितवासनमैकतां जगाम ।। ३१
— महोपनिषत, २/७७

अशुद्ध माया व तत्कार्यरूप कलंक के अभाव वश शुद्धस्वरूप महात्मा, समुद्र के जल की तरह निर्मल पवित्र निर्विशेष ब्रह्म की उपाधि से वासना शून्य होकर ब्रह्मरूप को प्राप्त होते हैं।।३०,३१

संशान्तदुःखमजड़ात्मकमेकसुप्त
मानन्दमन्थरमपेतरजस्तमो यत् ॥ ३२

आकाशकोशतनवोऽतनवो महान्त
स्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवा भवन्ति ॥ ३३

– अन्नपूर्णोपनिषत, ४/२४

भूमानन्द स्वरूप होने के कारण जो संशान्तदुःख, जड़ माया व उसके कार्य आदि से रहित होने के कारण जो अजड़ात्मक, एक, निर्विशेष साक्षीस्वरूप होने के कारण जो आनन्दमन्हर एवं निर्गुण होने के कारण जो रजः व तमो रहित हैं वे ही विदेहमुक्त हैं॥

''(सच्चिदानंदकाशं ब्रह्मेति अर्थात् सच्चिदानद स्वरूप आकाश ही ब्रह्म है)'' जो इस प्रकार मननशील आकाशकोश –तनु अर्थात् जीवन्मुक्त हैं, वे समस्त विकल्प एवं वासना–रहित होकर विदेहमुक्त पदवाच्य होते हैं॥३२,३३

विदेहमुक्त एवासौ विद्यते निष्कलात्मकः ॥ ३४
समग्राग्रयगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते ॥ ३५

– अन्नपूर्णोपनिषत, ४/१९

समस्त गुणों में 'सत्व' श्रेष्ठ गुण है। जब यह सत्वगुण भी निज ब्रह्मस्वरूप में लय को प्राप्त होता है, तब उसी निर्विशेष अवस्था में निर्मल विदेहयुक्त होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् वही अवस्था विदेहमुक्ति की अवस्था है।३४,३५

विदेहमुक्तौ विमले पदे परमपावने ॥ ३६
विदेहमुक्तिविषये तस्मिन्सत्त्वक्षयात्मके ॥ ३७

– अन्नपूर्णोपनिषत, ४/२०

चित्तनाशे विरूपाख्ये न किंचिदिह विद्यते ॥ ३८
न गुणा नागुणास्तत्र न श्रीर्नाश्रीर्न लोवता ॥ ३९

– अन्नपूर्णोपनिषत, ४/२१

विमल पद परम पवित्र विदेहमुक्ति में जब सत्वगुण भी लय को प्राप्त होते हैं और जब चित्त अपने कारण से लय को प्राप्त होता है, तब उसे विरुपाक्ष चित्तलयावस्था कहते हैं, इस अवस्था में– 'ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है' इस प्रकार निर्विकल्प रूप ज्ञान होता है। उस समय सत्व आदि गुण एवं अगुणभाव रहित होता है व तब मुमुक्षाश्रयणीया विद्या भी नहीं रहती, उस समय, प्रपञ्चाश्रयणीया अविद्या या ''आस्ति नास्ति'' इत्यादि विकल्पजात विषय भी नहीं रहते– केवल मात्र अद्वितीय ब्रह्मभाव रह जाता है॥ ३६,३७, ३८, ३९

जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४०
उपाधिनाशाद्ब्रह्मैव सद्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम् ॥ ४१

– आत्मोपनिषत्, २१

''ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है'' इस श्रुति के अर्थज्ञान द्वारा विशुद्ध ब्रह्मवेत्ता पुरुष कर्त्तव्य के अभाव वश कृतार्थ, देहाभिमान से रहित होने के कारण वे जीवितावस्था में भी सदा मुक्त एवं अविद्या जनित अपनी देह आदि उपाधि के नाश होने से वे अद्वय ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं॥ ४०,४१

शास्त्रेण न स्यात् परमार्थदृष्टिः
कार्यक्षमं पश्यति चापरोक्षात्॥ ४२
प्रारब्धनाशात् प्रतिभाननाश
एवं त्रिधा नश्यति चात्ममाया ॥ ४३

– वराहोपनिषत्, २/६९

अद्वैत् वेदान्त शास्त्र के श्रवण द्वारा पुर्वानुभुत प्रपञ्चगत परमार्थिक सत्यत्व ज्ञान का नाश होता है। उसके पश्चात् शास्त्र मनन से प्रादुर्भुत ज्ञान द्वारा प्रपञ्च की व्यवहारिक कार्यक्षमता का नाश होता है। प्रपञ्च संचित क्रियमान इस त्रिविध कर्मनाश से प्रातिभासिक ज्ञान का नाश होता है। इस प्रकार त्रिविध पारमार्थिक व्यवहारिक एवं प्रातिभासिक आत्ममाया का नाश होता है अर्थात् उस समय ज्ञानी विदेहमुक्त होते हैं॥ ४२,४३

अहिनिर्ल्वयनी सर्पनिर्मोको जीववर्जितः ॥ ४४
वल्मीके पतितरिस्तष्ठेत्तं सर्पो नाभिमन्यते ॥ ४५

एवं स्थूलं च सूक्ष्मं च शरीरं नाभिमन्यते ।। ४६
– वराहोपनिषत्, २/६७–६८

जिस प्रकार साँप की केंचुली के साँप से अलग होकर मृत् अवस्था में वल्मीक में गिरी रहने पर सर्प उसके अभिमान से मुक्त होकर रहता है, उसी प्रकार विदेहमुक्त पुरुष स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर पर किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते।। ४४,४५,४६

प्रत्यग्ज्ञानशिखिध्वस्ते मिथ्याज्ञाने सहेतुके ।। ४७
नेति नेतीति रूपत्वादशरीरो भवत्ययम् ।। ४८
– वराहोपनिषत्, २/६८

जीव से भिन्न ब्रह्मज्ञान द्वारा सहेतुक मिथ्याज्ञान से उत्पन्न प्रत्यकज्ञान (जीवभाव) विनष्ट होते हैं, उसके पश्चात् ''नेति नेति'' इस निषेधमुखी ज्ञान द्वारा अशरीर अर्थात् स्थूल–सुक्ष्म कारण इन त्रिविध शरीरों पर अभिमान रहित होकर ज्ञानी विदेहमुक्त पदवाच्य हो जाते हैं।।४७,४८

विश्वश्च तैजसश्चैव प्राज्ञश्चेति च ते त्रयः ।। ४९
विराड्हिरण्यगर्भश्च ईश्वरश्चेति ते त्रयः ।। ५०
ब्रह्माण्डं चैव पिण्डाण्डं लोका भूरादयः क्रमात् ।। ५१
स्वस्वोपाधिलयादेव लीयन्ते प्रत्यगात्मनि ।। ५२
– योगकुण्डल्युपनिषत्, २/२१–२३

''विश्व, तैजस, हिरण्यगर्भ, ये तीन व्यष्टि; विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर ये तीन समष्टि हैं''। ब्रह्माण्ड, पिण्डाण्ड एवं भूः, भुवः, स्वः, महः, जन, तपः, सत्य, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल व पाताल ये चर्तुदश लोक अपनी–अपनी उपाधि के लय से जीव से भिन्न ब्रह्म में जब लय को प्राप्त होते हैं, तब इस प्रकार भावापन्न विद्वान विदेहमुक्त पदवाच्य हो जाते हैं।। ४९,५०,५१,५२

तुष्णीमेव स्थितस्तुष्णीं तुष्णीं सत्यन्न किञ्चन।। ५३

जिस अवस्था में ब्रह्मवेत्ता संगरहित एवं सदा उदासीन भाव से तुष्ट होकर स्थित होते हैं एवं जिस समय वे ''ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है'' इस ब्राह्मी स्थिति में तुष्ट रहते हैं, उस समय उन्हें विदेहयुक्त कहते हैं

(विदेह कैवल्य केवल निष्प्रतियोगी ब्रह्मभाव मात्र)।।५३

कालभेद वस्तुभेदं देशभेदं स्वभेदकम् ।। ५४
किंचिद्भेदं न तस्यास्ति किंचिद्वापि न विद्यते।। ५५
– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/४२
जीवेश्वरेति वाक् क्वति वेदशास्त्रद्यहं त्विति ।। ५६
इदं चैतन्यमेवेति अहं चैतन्यमित्यपि ।। ५७
इति निश्चयशून्यो यो वैदेही मुक्त एव सः ।। ५८
– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/४६–४७

जिस अवस्था में कालभेद, वस्तुभेद, देशभेद या निज भेद आदि किसी भी प्रकार का कोई भेदज्ञान नहीं रहता, जिस अवस्था में ''जीव एवं ईश्वरभाव ही कहां है,वेद एवं शास्त्र ही कहां रहते हैं, अहं ज्ञान ही कहां रहता है'' इस प्रकार ज्ञान होता है, जिस अवस्था में स्थूल, सुक्ष्म कारण इन तीनों शरीरों के अभाव ज्ञान एवं ''यह चैतन्य है, मैं चैतन्य हूँ'' इस प्रकार की निश्चय ज्ञानशून्यता उदित होती है, उस निर्विशेष अवस्था–सम्पन्न को विदेहमुक्त कहते हैं।। ५४,५५, ५६, ५७, ५८

ब्रह्मभूतः प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दमयः सुखी ।। ५९
स्वच्छरूपो महामौनी वैदेही मुक्त एव सः ।। ६०
– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/३३

''ब्रह्महमिति अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ'' इस प्रकार ब्रह्मभावापन्न पुरुष को ब्रह्मभूत कहते हैं। जो ब्रह्मभूत हैं, उद्वेगजनक अन्तःकरण रहित होने के कारण वे प्रशान्तात्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप है तथा इसीलिए सुखी हैं, माया रहित होने के कारण वे शुद्धस्वरूप एवं अपने बह्मभाव में अत्यन्त मननशील हैं, इस प्रकार भावापन्न को विदेहमुक्त कहते हैं।।५९,६०

ब्रह्मैवाहं चिदेवाहमेवं वापि न चिन्तयते।।६१
चिन्मात्रैव यस्तिष्ठेद् वैदेही मुक्त एव सः।।६२

''मैं ब्रह्म एवं मैं चैतन्यस्वरूप हूँ'' जो इस प्रकार के भेदज्ञान की चिन्ता नहीं करते एवं केवल निर्विशेष ब्रह्मभाव में रहते हैं, उस समय उन्हें विदेहमुक्त कहते हैं।।६१,६२

चैतन्यमात्रसंसिद्धः स्वात्मारामः सुखासनः।। ६३

– तेजोबिंदूपनिषत्, ४/४८

जो अचेतन प्रपञ्चापहन्वसिद्ध चैतन्य मात्र, निज ब्रह्मस्वरूप में रतिशील होने के कारण जो स्वात्माराम हैं, सुखमात्र रूप में स्थित होने के कारण जो सुखासन हैं, जो ओंकार के चतुर्थस्थानीय एवं जो परमानन्दस्वरूप हैं उन्हें विदेहमुक्त कहते हैं।। ६३,६४

यस्य प्रपञ्चभानं न ब्रह्माकारमपीह न।।६५
अतीतातीतभावो यो वैदेही मुक्त एव सः।। ६६

महाकाव्यरत्नावली,२०

जिनमें ''प्रपञ्च के आस्ति नास्ति भवति '' आदि आकार का ज्ञान एवं प्रपञ्च के आधार ब्रह्माकार वृत्ति का उदय नहीं होता, जो सर्वातीत चतुर्थ अवस्था के भी अतीत हैं, उन्हें विदेहमुक्त कहते हैं।। ६५,६६

चित्तवृत्तेरतीतो यश्चित्तवृत्त्यवभासकः ।। ६७
सर्ववृत्तिविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।।६८

– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/४८

जो चित्तवृत्ति से भी अतीत किन्तु चित्तवृत्ति के प्रकाशक एवं स्वयं निर्विशेष ब्रह्म होने के कारण सर्व वृत्ति शून्य हैं, उसी निर्विशेष आत्मा को विदेहमुक्त कहते हैं।।६७,६८

सर्वत्रैवाहमात्मास्मि परमात्मा परात्मकः।। ६९
नित्यानन्दस्वरूपात्मा वैदेही मुक्त एव सः।। ७०

''परमात्मक एवं अपरमात्मक (प्रपञ्च एवं जीवात्मक) सर्वत्र मैं ही एकमात्र आत्मा के रूप में विद्यमान हूँ एवं मैं ही नित्यानन्द स्वरूप हूँ'' इस प्रकार की अवस्थायुक्त ब्रह्मवेत्ता को विदेहमुक्त कहते हैं।।६९,७०

जीवात्मपरमात्मेति चिन्तासर्वस्ववजितः ।। ७१

– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/६५

सर्वसंकल्पहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।। ७२

– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/६८

जीवात्मा एवं परमात्मा इन दोनों की चिन्ता से रहित एवं स्वातिरिक्त संकल्प वर्जित ब्रह्मवित् को विदेहमुक्त कहते हैं।७१,७२

आत्मज्ञेयादिहीनात्मा यत्किंचिदिदमात्मकः ।। ७३
भानाभानविहीनात्मा वैदेही मुक्त एव सः ।। ७४

– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/७९

ब्रह्म के अतिरिक्त आत्मा एवं विषय ज्ञान रहित, इदं–पदवाच्य किसी भी विषय में, जो तद्भाव रहित हैं, जो भाव एवं अभाव ज्ञान से विहीन हैं, ऐसे निर्विशेष ब्रह्म भावापन्न ब्रह्मवित् को विदेहमुक्त कहते हैं।।७३,७४

ओंकारवाच्यहीनात्मा सर्ववाच्यविवर्जितः ।। ७५
अवस्थात्रयहीनात्मा अक्षरात्मा चिदात्मकः ।। ७७

– तेजोबिन्दूपनिषत्। ४/७८

जो ओंकार से भी वाच्यरहित हैं, जो सर्ववाच्यों के अतीत एवं जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इे तीनों अवस्थाओं से वर्जित हैं, ऐसे निर्विशेष ब्रह्मभावापन्न को विदेहमुक्त कहते हैं।। ७५,७६

इति विंशं प्रकरणं समाप्तम्।।

उपसंहार

विध्यङ्गवन्धमुग्गुल्फो ह्यविद्वद्धेयजङ्घकः।
जगन्मिथ्याजानुदेशस्तुपदेशोरूदेशकः।
ब्रह्मैत्मक्यकटिदेशो विद्वन्मनननाभिकः।
जीवन्मुक्तोख्यदहरः सानुभुतिकरद्वयः।
स्वसमाधिस्कन्धदेशः स्वस्वरूपाख्यकन्धरः।
फलभूतमहावाक्यफलो बैदेहमस्तकः।
एवं विध्याद्यदेहान्तमहावाक्यक्लेवरः।
वस्तुतो निर्विशेषात्मा त्रिपान्नारायणोहस्म्यहम्।

समस्त विधिवाक्य महारत्नावली रूप कलेवर के चरणस्वरूप हैं। समस्त वद्ध व मोक्ष वाक्य इसके गुल्फस्वरूप, अविद्वन्निदावाक्य समस्त इसके जंघादेश,
समस्त जगन्थ्यिा वाक्य इसके जानुदेश,
समस्त उपदेश वाक्य इसके उरुदेश,
समस्त ब्रह्मैत्मक्य वाक्य इसके कटिदेश,
समस्त मनन वाक्य इसके नाभिदेश,
समस्त जीवन्मुक्ति वाक्य इसके वहराकाश (हृदयाकाश),
समस्त स्वानुभुति वाक्य इसके करद्वय
समस्त समाधि वाक्य इसके स्कंधदेश
समस्त अष्टविध स्वरूप वाक्य इसकी कंधरा अर्थात् ग्रीवा के पश्चात्भाग,
समस्त फल वाक्य महावाक्य के फलस्वरूप, समस्त विदेहमुक्ति वाक्य महावाक्य कलेवर के मस्तक–स्वरूप हैं। इस प्रकार विधिवाक्य से आरंभ कर विदेह वाक्यान्त महाकाव्यरूप जिसका कलेवर है, जो वस्तुतः निर्विशेषयात्मस्वरूप एवं जो त्रिपाद नारायणस्वरूप है, मैं वही निर्विशेष ब्रह्म हूँ।।

समाप्त